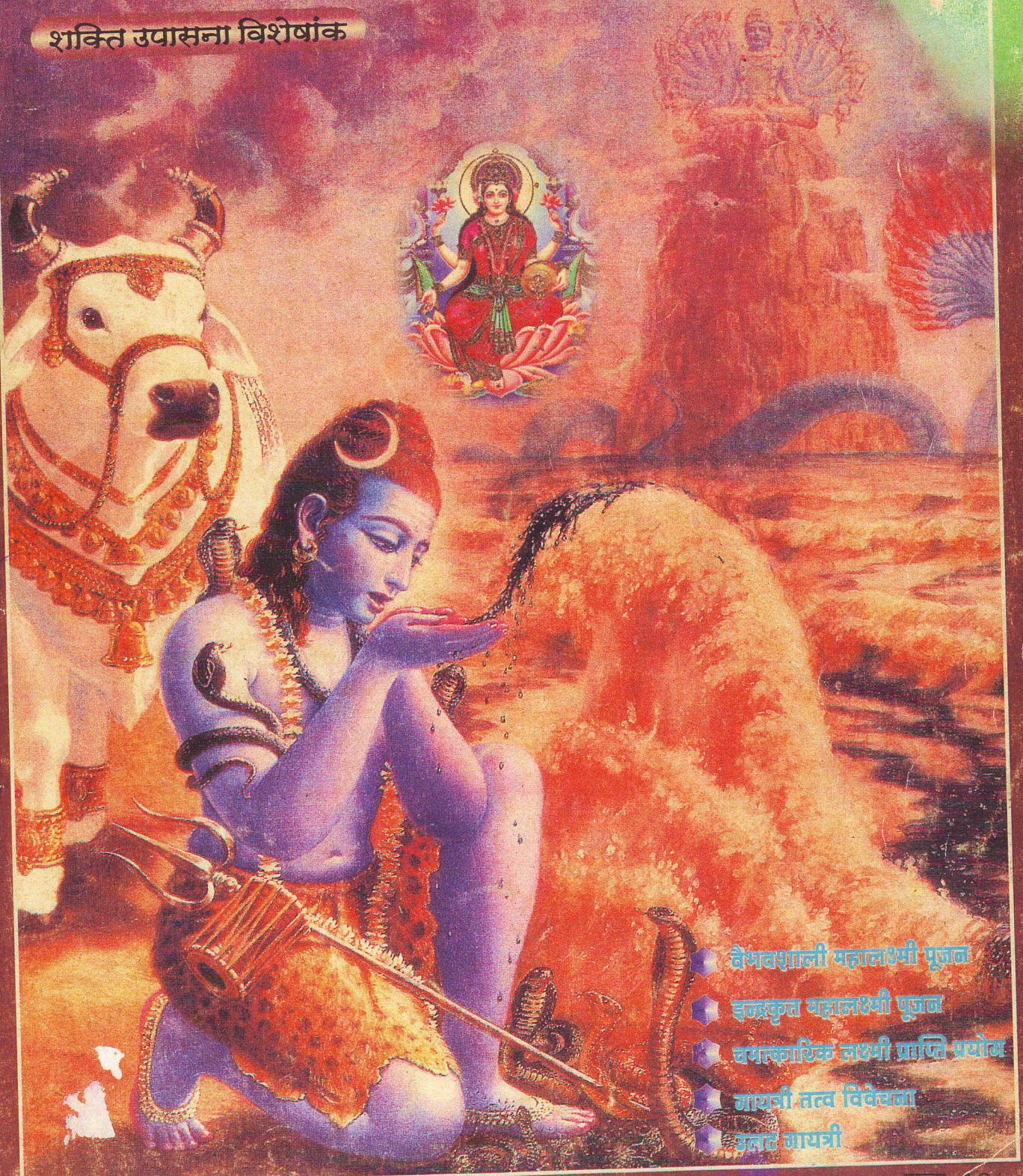


॥ कैं श्री ह्रीं क्लीं ऐं कमलवासिन्त्यै स्वाहा ॥

Oct - 2000

साधना सिद्धि विज्ञान

शक्ति उपासना विशेषांक



- वैभवशाली महालक्ष्मी पूजन
- इष्टकृत महालक्ष्मी पूजन
- चयात्कारिक लक्ष्मी प्राप्ति प्रयोग
- गायत्री तत्त्व विवेचना
- उत्तम गायत्री

मूल्य 18/-



ॐ लक्ष्मीनारायणाभ्यां नमः

साधना सिद्धि विज्ञान



वर्ष 01

अंक 12

माह- 15 अक्टूबर से 15 नवम्बर 2000



- ❁ विचार प्रवाह 2
- ❁ शिव वाणी 3
- ❁ वैभवशाली महालक्ष्मी पूजन 5
- ❁ इन्द्रकृत महालक्ष्मी पूजन 11
- ❁ श्री गायत्री रहस्यम् 14
- ❁ अध्यात्म की भाषा 19
- ❁ गायत्री मंत्र जप विधान 25
- ❁ एकीकरण 27
- ❁ गायत्री मंत्र के दृष्ट ब्रह्मत्रयि विभामित्र 32

- ❁ उदर शूल (पेट में दर्द/ऐठन) (होम्यो चिकित्सा) 36
- ❁ अद्भुत चमत्कारिक एवं तीव्र फलदायी लघु प्रयोग 39
- ❁ गायत्री स्मृति 44
- ❁ महालक्ष्मी की प्राप्ति का अमोघ साधन दुर्लभ महालक्ष्मी स्तोत्र 56
- ❁ लक्ष्मी की कृपा व धन धान्य वर्धक चमत्कारिक वनस्पति श्री फल 58
- ❁ दीक्षा संस्कार कार्यक्रम 60
- ❁ दीपावली पर सम्पन्न किये जाने वाले कुछ विशिष्ट पूजन 63
- ❁ योग 65
- ❁ ब्रह्म विद्या 67
- ❁ उलट गायत्री 72
- ❁ गायत्री गीता 75

प्रेरणास्रोत

आदि गुरु श्री शंकराचार्य जी

सम्पादक

डॉ. साधना सिंह

कार्यकारी सम्पादक

पं. लोकेश दीक्षित

उप. सम्पादक

श्री अजय जी

कार्यकारी विभाग

श्री अशोक सिसोदिया,
अनिल सक्सेना, अवधेश
कुमार, आत्माराम,

प्रकाशक स्वामित्व एवं मुद्रक

अरविन्द सिंह

द्वारा

सहयोग ऑफसेट

227, हरेगोपाल कॉम्प्लेक्स,
जोन-1 एम.पी. नगर भोपाल से
मुद्रित एवं

साधना सिद्धि विज्ञान

5 प्लॉट नं. 210 जोन-1

एम.पी. नगर भोपाल से प्रकाशित

COVER DESIGN

Awork Bhopal ph: 580416

सभी विवादों के लिये न्याय क्षेत्र भोपाल मान्य होगा

मूल्य एक प्रति 18/-

वार्षिक सदस्यता 180/- (डाक व्यय सहित)

रजि. नं. म. प्र. हिन्दी/1999/598

❁ सम्पर्क ❁

साधना सिद्धि विज्ञान

शॉप नं. 5 प्लॉट नं. 210 जोन-1 एम.पी. नगर भोपाल-462011 दूरभाष : (0755) 576346, 591143

विचार प्रवाह

आज से ठीक एक वर्ष पूर्व मैंने साधना सिद्धि विज्ञान का गुरु प्रेरणा से प्रकाशन शुरू किया था। बारहवाँ अंक आपको गायत्री एवं दीपावली अंक के रूप में प्रस्तुत कर रहा हूँ। एक वर्ष में पत्रिका ने अपना विशेष स्थान बनाया है। बहुत से उतार-चढ़ाव देखे, हर अंक में आमूल-चूल परिवर्तन किया गया है। कोशिश की गई है कि ईमानदारी के साथ पत्रिका के सभी स्तम्भों के साथ न्याय किया जाय। पत्रिका की पूरी टीम में शामिल लोग पढ़े लिखे, चेतनामय एवं निखिलेश्वरानंद जी से दीक्षित हैं। इन सबके सहयोग से ही पत्रिका में निरंतर सुधार होता रहा है एवं आप सब के द्वारा लिखे गये प्रशंसा पत्रों ने हमें दिव्य शक्ति प्रदान की है। पत्रिका में सुधार की निरंतर गुंजाइश है जो कि हम करते रहेंगे। गायत्री शक्ति ने इस देश में बहने वाली अध्यात्म की अनंत धाराओं को आपस में बाँधकर रखा हुआ है। अनादिकाल से गायत्री की उपासना प्रत्येक सनातन सम्प्रदाय में चली आ रही है। गायत्री मूलाधार शक्ति है अध्यात्म के सभी अंगों की। दीपावली की आप सबको विशेष शुभकामनाएँ एवं आशीर्वाद। लक्ष्मी आपके जीवन में सात्विक रूप से स्थापित हो बस यही कामना है।

श्री अरविन्द जी

दो शब्द

पत्रिका में प्रकाशित सामग्री विषय विशेषज्ञों के विवेक, सम्बन्धित क्षेत्र में उनके विशेष अनुभव तथा शास्त्र सम्मत है। पत्रिका के प्रकाशन का उद्देश्य आध्यात्मिक चेतना जागृत कर पाठकों को अंधकार से प्रकाश की ओर ले जाना है तथाकथित बुद्धिमानों के तर्क-कुतर्कों में उलझकर विवाद उत्पन्न करना कदापि नहीं। पत्रिका में प्रकाशित सामग्री यदि ऐसे बुद्धिमानों व तार्किकों की कसौटी पर खरी न उतरे तो वे इसे काल्पनिक समझकर भूल जाँय। हमारा उद्देश्य साधना, जप, तप, योग, ध्यान, प्राणायाम जैसी सनातन पद्धतियों की उपयोगिता तथा जीवन में इसकी महत्ता को पाठकों तक पहुँचाना है ताकि वे इनका अधिक से अधिक लाभ ले सकें।

पत्रिका में प्रकाशित लेख दुर्लभ ग्रंथों पर आधारित हैं सभी लेखों से संपादक का सहमत होना अनिवार्य नहीं है। किसी प्रकार के विवाद का निपटारा भोपाल न्यायालय के अधिकार क्षेत्र में होगा। बहुत से ऐसे लेख भी पत्रिका में प्रकाशित किये गये हैं जो लेखकों के स्वयं के अनुभव हैं जिसकी आलोचना करना व्यर्थ है। प्रकाशित साधना व प्रयोग आदि की सफलता/असफलता तथा आवरण पृष्ठ की डिजाइन एवं मुद्रण सम्बन्धी त्रुटियों के लिये पत्रिका परिवार जिम्मेदार नहीं होगा।

कार्यकारी सम्पादक

शिव वाणी

महाभारत का युद्ध समाप्त हो गया एवं सारे ताम-झाम समेटकर कृष्ण ने जब युधिष्ठिर को हस्तिनापुर की राजगद्दी पर बिठा दिया तब वे कुन्ती से बोले कि माता कोई और काम शेष बचा हो तो बताइये अन्यथा मैं द्वारिका की ओर प्रस्थान करूँ। कुन्ती प्रभु श्रीकृष्ण की बुआ थी। कुन्ती हाथ जोड़कर बोली-भगवन! आप हमें ऐसा आशीर्वाद दें कि हमारे ऊपर कष्ट और क्लेश आते ही रहें जिससे कि आप का सानिध्य एवं दर्शन हमारे लिए सुलभ बना रहे। कृष्ण मुस्कुरा दिए। कृष्ण की मुस्कान ही सब कुछ है। शिष्य भी गुरु की तलाश तभी शुरू करते हैं जब कष्ट और क्लेश उन्हें घेर लेते हैं। कुछ थोड़े से कष्ट में आ जाते हैं तो कुछ आलसी शिष्य कष्ट बढ़ने का इंतजार करते हैं जब कष्ट असहनीय हो जाते हैं तब गुरु की तरफ भागते हैं। विश्वामित्र भी ब्रह्मऋषि बनने के लिए भागे थे बिना मातृत्व को समझे। मेनका रूपी प्रियतमा में ही मातृत्व ढूँढ लिया। क्षत्रियों की आदत ही ऐसी होती है। गुरु का मातृत्व पत्नी, पुत्री या प्रेमिका कभी प्रदान नहीं कर सकती। खैर यह सब तो जीवन में चलता रहता है देर-सबेर आदमी का मर्म स्थल जागृत हो ही जाता है। जब तक मर्म जागृत नहीं होगा लोग गुरु को आत्मसात नहीं कर सकते। गुरु शिक्षक, अध्यापक, व्याख्याता इत्यादि के समान तनख्वाहिया नहीं हैं। गुरु, पण्डितों के समान या ज्योतिषियों या तांत्रिकों के समान सौदेबाजी नहीं करता। सौदेबाजी से अनुष्ठान नहीं होते। गुरु तनख्वाह पर कार्य नहीं करते। वह किसी के अधीन नहीं होते। वह किसी के आदेश पर क्रियाशील नहीं होते। कृष्ण को कौन आदेशित करेगा? गुरु को कोचिंग क्लास भी नहीं चलानी चाहिए। गुरु परीक्षा पास

कराने वाला ठेकेदार नहीं है। उसे पैसा लेकर ऊट-पटांग तांत्रिक अनुष्ठान भी नहीं कराने चाहिए। गुरु को एक माता के समान कार्य करना चाहिए जो सदैव अपने पुत्रों को सद्मार्ग पर डालने की कोशिश करती रहती है, उनका भला चाहती है, उन्हें धन-धान्य पूर्ण, उन्नतिशील एवं हँसता और खेलता हुआ देखना चाहती है। ऐसा क्यों होता है? क्योंकि पुत्र या संतान माता के मर्म स्थल होते हैं। आजीवन इन्हीं मर्म स्थलों से ममत्व निर्झर रूप से बहता रहता है। माता तो एक सीढ़ी है, गुरु तो एक सीढ़ी है। गुरु चाहता है कि शिष्य इस गुरु रूपी सीढ़ी पर चढ़कर अध्यात्म के आकाश तक पहुँच सके परन्तु इतना भी ख्याल रखे कि सीढ़ी यथावत रहे। दूसरे भी उस पर चढ़ सकें और स्वयं भी कभी आप इस सीढ़ी से पुनः नीचे उतर सकें इसी में बुद्धिमानी है। अध्यात्म की दुनिया अनंत है नाना पंथ हैं, नाना प्रकार के विचार हैं परन्तु इन सब मतभेदों के चलते हुए अध्यात्म की धारा में बहने वाले साधकों में मन भेद नहीं होना चाहिए। दो भाइयों में विवाद तो होते ही रहते हैं फिर भी इतनी जगह निश्चित रखनी चाहिए कि कभी पुनः एकत्रित हो सकें। मातृ शक्ति सारा जीवन यही करती है। पुत्र आपस में झगड़ते हैं फिर भी वे उन्हें एक होने की सलाह देती हैं। एक गुरु से अनेक धाराएँ तो निकलती ही हैं। यह तो प्रकृति का नियम है। ऐसा होना भी चाहिए फिर भी गुरु की कोशिश यही होती है कि यह सब अंत में मिल जुलकर रहें। महाभारत न मचायें नहीं तो वंश का अंत भयावह ही होगा। महाभारत को रोकना ही होगा विभाजन अच्छी प्रक्रिया नहीं है। समस्या यह है कि तेजस्वी एवं प्रचण्ड व्यक्तियों को एक साथ

बांधना बहुत मुश्किल है इसीलिए स्थान परिवर्तन कर दिया जाता है जिससे कि सब लोग शांति पूर्वक जी सकें। शंकराचार्य जी ने भी चार मठ बना दिए थे। मेरे जाने के बाद मेरे शिष्य और पुत्र कई धाराओं में विभक्त होंगे परन्तु इन सबका मातृ केन्द्र तो निखिल ही होगा। इन मूर्खों के अंतर्गत निखिल शक्ति ही क्रियाशील रहेगी। यह समझें या न समझें यह इनका विषय है। आपस में लड़ेंगे, एक-दूसरे को अपमानित करेंगे तो यही भोगेंगे और मिल-जुलकर एक-दूसरे की तेजस्विता का सम्मान करते हुए पूर्ण निष्ठा के साथ, पूर्ण समर्पण के साथ, निर्लिप्त भाव से मेरे लिए कर्म करेंगे तो फिर सिंहासन पर बैठेंगे अन्यथा सबके सब गड़ढे में जायेंगे। देर सबेर सबको यह बात समझ में आ जायेगी। इन सबको गुरु सेवक जैसे विषैले एवं कुकर्मों और षडयंत्रकारी शकुनि से बचकर रहना पड़ेगा। जिस गुरु सेवक ने मुझे इतना कष्ट दिया वह तो निश्चित ही अपने कपटपूर्ण षडयंत्रों से मेरे शिष्यों को आपस में लड़वायेगा और इतिहास साक्षी होगा कि इस गुरु सेवक का अंत अत्यंत ही भयावह होगा। यह मेरी भविष्यवाणी है जो कि कभी खाली नहीं जायेगी। गायत्री शक्ति का यही मर्म है। सब आपस में गुँथे रहो, व्यर्थ का दम्भ छोड़ो एवं सत्य को पहचानो यही रहस्य है कि मेरे द्वारा प्रदान किए गये गुरु मंत्र के साथ माता गायत्री का दिव्य मंत्र भी अवश्य मौजूद रहता है। जीवन में बहुत कुछ सीखने को है, प्राप्त करने को है। आर्यों में मातृ शक्ति की उपासना एवं उसका आदर, सम्मान ही उन्हें सर्वश्रेष्ठ बनाने में मुख्य भूमिका निभाता है। अतः स्वयं के द्वारा अर्जित धन, अर्थ का सात्विक उपयोग करो। उसे मातृ स्वरूप में ग्रहण करो न कि भोग्या स्वरूप में। यही मेरा संदेश है सभी साधकों एवं शिष्यों को। जीवन की ऊर्जा को व्यर्थ के कार्यों में नष्ट न करो। कंकड़ पत्थर बटोरने से कुछ नहीं होगा। एक दिन स्वयं कंकड़ पत्थरों में दब जाओगे। रत्नों को पहचानो और रत्नों से सुशोभित हो। गायत्री का अनुष्ठान मैंने भी किया है। गायत्री के अनुष्ठान से ही प्राण शक्ति विकसित होगी प्राण शक्ति का विकास ही आपको प्रज्ञा शक्ति प्रदान करेगा। यही प्रज्ञा शक्ति समस्त आयामों को

तुम्हारे जीवन में विकसित करेगी। शून्य से प्राप्त करने की गूढ़ कला गायत्री के माध्यम से प्राप्त हो सकती है। जब मैंने जीवन प्रारम्भ किया था तब विरासत में न के बराबर भौतिक सम्पदा मेरे पास थी। यश, लक्ष्मी, कीर्ति, सिद्धियाँ एवं ज्ञान विज्ञान तो कोसों दूर की बात थी परन्तु इसी गायत्री शक्ति के बल पर आगे चलकर मैंने अपने जीवन का तपोकाल सरलता के साथ सम्पन्न किया। इसी गायत्री शक्ति के कारण मैं अपने जीवन में फिशलन भरी सामाजिक व्यवस्थाओं में बेदाग चलता रहा। इसी मातृ शक्ति ने श्रेष्ठ साधकों का समूह मुझे प्रदान किया। गुरु अकेला कुछ नहीं होता है। प्राचीन भारत में नालन्दा एक शिक्षा और ज्ञान का महत्वपूर्ण केन्द्र था। इसमें प्रवेश लेने वाले शिष्य को अनेकों द्वारों से गुजरना पड़ता था। एक द्वार पर प्रधान ज्योतिषी होता था, एक पर तत्व चिंतक। किसी अन्य द्वार पर दर्शन शास्त्री, तो कहीं पर वेदान्ती इत्यादि-इत्यादि इन सब द्वारों से सफलतापूर्वक निकलने के पश्चात् ही शिष्य मुख्य गुरु तक पहुँचने में सक्षम हो पाता था। कुछ तो योग्यता चाहिए ही अध्यात्म के पथ में इस बात का विशेष ध्यान रखना चाहिए अन्यथा ब्रह्म विद्या भी बाजारू लोगों के बीच पहुँच जायेगी। जब गुरु प्राप्ति में इतनी कठिनता है तो फिर निश्चित ही देव शक्तियों को अनुभूत करने के लिए तो कठिनता होगी ही। दुर्लभता, दूरी इत्यादि अध्यात्म में अत्यधिक आवश्यक है। योग्य व्यक्ति को ही ब्रह्म विद्या प्रदान करनी चाहिए नहीं तो परिणाम भीषण होते हैं। परमाणु बम को बनाने की तकनीक भी परमाणु सम्पन्न राष्ट्र अत्यंत ही गोपनीय रखते हैं ताकि वह गलत हाथों में न लग सके। लक्ष्मी भी गलत हाथों में न पहुँच पाये नासमझ व्यक्ति इसका दुरुपयोग न कर पाये, यही विष्णु की चिन्ता है। विष्णु ने तो अमृत भी असुरों को पान करने नहीं दिया था। गुरु भी ऐसा ही करते हैं वे पूर्ण रूपेण ब्रह्म सिद्धांतों के अनुरूप ही क्रियाशील रहते हैं एवं ब्रह्म व्यवस्थाओं को कभी भी नहीं तोड़ते हैं और तोड़ने वालों को ब्रह्म दण्ड देने से भी नहीं चूकते हैं, न्याय ही गुरु का धर्म है। कृष्ण ने स्पष्ट कहा है न्यायार्थ अपने बन्धुओं को दण्ड देना भी उचित है। यही मेरा संदेश है।

★

वैभवशाली महालक्ष्मी पूजन

भगवती महालक्ष्मी समस्त चल अचल, दृश्य एवं अदृश्य इत्यादि सम्पूर्ण सिद्धियों एवं निधियों की अधिष्ठात्री देवी हैं। वे ही सभी प्रकार के वैभव प्रदान करने वाली हैं सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में कोई भी प्राणी ऐसा नहीं होगा जो जीवन में समस्त वैभव से परिपूर्ण न होना चाहता हो इसलिए आवश्यक है कि भगवती महालक्ष्मी का पूजन भी वैभवशाली होना चाहिए। दरिद्रता से महालक्ष्मी कभी प्रसन्न नहीं होती अतः उनका पूजन समग्रता व सम्पूर्णता के साथ करना चाहिए। जब भगवती आपके दामन में सुख समृद्धि यश प्रसिद्धि इत्यादि लुटाने के लिए सदैव तत्पर रहती हैं तो फिर उनके पूजन में हिसाब किताब या गणित लगाने का क्या औचित्य है? कहने का आशय यह है कि जो कुछ भी है उन्ही का दिया हुआ है। अतः साधक को चाहिए कि वह पूर्ण विधि विधान से जिस तरह देवता और ऋषि गण दिव्यता व भव्यता के साथ मातृ पूजन सम्पन्न करते थे उसी प्रकार भगवती महालक्ष्मी का वैभवशाली पूजन करें

पूजन विधि- साधक को चाहिए कि वह सर्वप्रथम स्नानादि नित्य क्रियाओं से निवृत्त होकर पहले से पवित्र व स्वच्छ किये हुए पूजा स्थल में पूजा के लिए आवश्यक समस्त सामग्री गंगा जल, दूध, दही, घृतविविध फलों व गन्ने का रस, दक्षिणावर्ती शंख, भगवती महालक्ष्मी का यंत्र, शहद, पुष्प, धूप-दीप-नैवेद्य, चन्दन कुकुम्भ, मौली अक्षत, कलश आदि पहले से ही एकत्र करके रख ले। मातृकान्यास करके षडङ्गन्यास करें। फिर अन्तर्मन से गुरु से आज्ञा लेकर पूजन आरम्भ करें-

पवित्रीकरण-

अपने बाँये हाथ में जल लेकर दाहिने हाँथ से अपने ऊपर तथा समस्त पूजन सामग्री पर छिड़के इस दौरान निम्नानुसार मंत्रोच्चार करें-

ॐ अपवित्रः पवित्रो व सर्वावस्थां गतोऽपि वा ।
यः स्मरेत पुण्डरीकाक्ष स वाह्याभ्यन्तरः शुचिः ॥
तत्पाश्चात् आसन शुद्धि व स्वस्ति पाठ निम्न मंत्रो का उच्चारण करते हुये करें-

ॐ आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतोऽदब्धासो
अपरीतास उद्भिदः। देवा नो यथा सदमिद् वृधे
असन्नप्रायुवो रक्षितारो दिवे दिवे॥ देवानां भद्रा
सुमतिर्ऋजूयतां देवानां रातिरभि नो निवर्तताम्।
देवानां सख्यमुपसेदिमा वयं देवा न आयुः प्रतिरन्तु
जीवसे॥ तान्पूर्वया निविदा हूमहे वयं भगं मित्रमदितिं
दक्षमस्त्रिधम्। अर्यमणं वरूणं सोममश्विना सरस्वती
नः सुभगा मयस्करत्॥ तत्रो वातो मयोभु वातु भेषजं
तन्माता पृथिवी तत्पिता द्यौः। तद् ग्रावाणः सोमसुतो
मयोभुवस्तदश्विना शृणुतं धिष्यया युवम्॥ तमीशानं
जगतस्तस्थुषस्पतिं धियज्जिन्वमवसे हूमहे वयम्।
पूषा नो यथा वेदसामसद् वृधे रक्षिता पायुरदब्धः
स्वस्तये॥ स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा
विश्ववेदाः। स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो
बृहस्पतिर्दधातु॥ पृषदश्वा मरुतः पृश्निमातरः शुभं
यावानो विदथेषु जग्मयः। अग्निजिह्वा मनवः
सूरचक्षसो विश्वे नो देवा अवसागन्निह॥ भद्रं
कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवांसस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः॥
शतमिन्नु शरदो अन्ति देवा यत्रा नश्चक्रा जरसं
तनूनाम्। पुत्रासो यत्र पितरो भवन्ति मा नो मध्या
रीरिषतायुर्गन्तोः॥ अदितिर्द्यौरदितिरन्तरिक्षमदितिर्माता
स पिता स पुत्रः। विश्वे देवा अदितिः पञ्च जना

अदितिर्जातमदितिर्जनित्वम् ॥
 द्यौः शान्तिरन्तरिक्षं शान्तिः पृथ्वी
 शान्तिरापः शान्तिरोषधयः
 शान्तिः । वनस्पतयः शान्तिर्विश्वे
 देवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः सर्वं
 शान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सा मा
 शान्तिरेधि ॥ यतो यतः समीहसे
 ततो नो अभयं कुरु । शं नः कुरु
 प्रजाभ्योऽभयं नः पशुभ्यः ॥
 सुशान्तिर्भवतु ॥

श्रीमन्महागणाधिपतये नमः ।
 लक्ष्मीनारायणाभ्यां नमः ।
 उमामहेश्वराभ्यां नमः ।
 वाणीहिरण्यगर्भाभ्यां नमः ।
 शचीपुरन्दराभ्यां नमः ।
 मातृपितृचरणकमलेभ्यो नमः ।
 इष्टदेवताभ्यो नमः ।
 कुलदेवताभ्यो नमः । ग्राम
 देवताभ्यो नमः । वास्तुदेवताभ्यो
 नमः । स्थानदेवताभ्यो नमः
 सर्वेभ्यो देवेभ्यो नमः । सर्वेभ्यो
 ब्राह्मणेभ्यो नमः । ॐ
 सिद्धिबुद्धिसहिताय
 श्रीमन्महागणाधिपतये नमः ।



सुमुखश्चैकदन्तश्च कपिलो गजकर्णकः ।
 लम्बोदरश्च विकटो विघ्ननाशो विनायकः ॥
 धूपकेतुर्गणाध्यक्षो भालचन्द्रो गजाननः ।
 द्वादशैतानि नामानि यः पठेच्छृणुयादपि ॥
 विद्यारम्भे विवाहे च प्रवेशे निर्गमे तथा ।
 संग्रामे संकटे चैव विघ्नस्तस्य न जायते ॥
 शुक्लाम्बरधरं देवं शशिवर्णं चतुर्भुजम् ।
 प्रसन्नवदनं ध्यायेत् सर्वविघ्नोपशान्तये ॥
 अभीप्सितार्थसिद्धयर्थं पूजितो यः सुरासुरैः ।
 सर्वविघ्नहरस्तस्मै गणाधिपतये नमः ॥
 सर्वमङ्गलमाङ्गल्ये ! शिवे ! सर्वार्थसाधिके ।

शरण्ये त्र्यम्बके ! गौरि नारायणि नमोऽस्तु ते ॥
 सर्वदा सर्वकार्येषु नास्ति तेषाममङ्गलम् ।
 येषां हृदिस्थो भगवान् मङ्गलायतनो हरिः ॥
 तदेवं लग्नं सुदिनं तदेव ताराबलं चन्द्रबलं तदेव ।
 विद्याबलं देवबलं तदेव लक्ष्मीपते तेऽङ्गि युगं स्मरामि ॥
 लाभस्तेषां जयस्तेषां कुतस्तेषां पराजयः ।
 येषामिन्दीवरश्यामो हृदयस्थो जनार्दनः ॥
 यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः ।
 तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्धुवा नीतिर्मतिर्मम ॥
 अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते ।
 तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ॥

स्मृतेः सकलकल्याणं भाजनं यत्र जायते ।
 पुरुषं तमजं नित्यं ब्रजामि शरणं हरिम् ॥
 सर्वेष्वारम्भकार्येषु त्रयस्त्रिभुवनेश्वराः ।
 देवा दिशन्तु नः सिद्धिं ब्रह्मेशानजनार्दनाः ॥
 विश्वेशं माधवं ढुण्डं दण्डपाणिं च भैरवम् ।
 वन्दे काशीं गुहां गङ्गां भवानीं मणिकर्णिकाम् ॥
 वक्रतुण्ड महाकाय कोटिसूर्यसमप्रभ ।
 निर्विघ्नं कुरु मे देव सर्वकार्येषु सर्वदा ॥

॥ गणेशाम्बिकाभ्यां नमः ॥

संकल्प- हाँथ में जल व अक्षत लेकर निम्न मंत्रोच्चार करते हुए संकल्प लें-

ॐ विष्णुर्विष्णुर्विष्णुः श्रीमद्भगवतो महापुरुषस्य
 विष्णोराज्ञया प्रवर्तमानस्य ब्राह्मणोऽह्नि द्वितीयपरार्धे
 श्रीश्वेतवाराह कल्पे वैवस्वतमन्वन्तरे अष्टाविंशतितमे
 कलियुगे कलिप्रथम चरणे मासोत्तमे मासे कार्तिक
 मासे कृष्ण पक्षे पुष्यायामावास्यां तिथौ अमुक
 वासरे (दिन का नाम लें) अमुक गोत्रोत्पन्नः
 (अपना गोत्र बोलें) अमुक नाम शर्माऽहं श्रुति
 स्मृति पुराणोक्तफलावाप्तिकामनया
 ज्ञाताज्ञातकायिकवाचिक मानसिक सकलपाप
 निवृत्ति पूर्वकं स्थिर लक्ष्मी प्राप्तये श्री महालक्ष्मी
 प्रीत्यर्थं महालक्ष्मीपूजनं कुबेरादीनां च पूजनं करिष्ये ।
 तदङ्गत्वेन गौरीगणपत्यादि पूजनं च करिष्ये ।

प्रतिष्ठा-

बाँये हाँथ में अक्षत लेकर निम्न मंत्र का उच्चारण करते हुये हुये दाहिने हाँथ से अक्षत को गणेश प्रतिमा पर छोड़े

ॐ मनो जूतिर्जुषतामाज्यस्य बृहस्पतिर्यज्ञमिमं
 तनोत्विरिष्टं यज्ञ समिमं दधातु विश्वे देवास इह
 मादयन्तामो मप्रतिष्ठ ।

ॐ अस्यै प्राणाः प्रतिष्ठन्तु अस्यै प्राणाः क्षरन्तु च ।
 अस्यै देवत्वमर्चायै मामहेति च कश्चन ॥

गणपति पूजन के उपरान्त स्वच्छ आसन पर भगवती महालक्ष्मी की प्रतिमा तथा चांदी की प्लेट पर महालक्ष्मी यंत्र स्थापित करें। तत्पश्चात् कलश पूजन करके कलश स्थापित करें कलश के अन्दर जल छोड़ते समय समस्त

तीर्थों व पवित्र नदियों का आवाहन करें और कलश के ऊपर पंच पल्लव रखकर उस पर मौली बँधा हुआ नारियल स्थापित कर दें। धूप, दीप आदि जला लें ताकि वातावरण शुद्ध हो जाय। यदि यंत्र व विग्रह प्राण प्रतिष्ठत न हो तो पहले उनकी प्राण प्रतिष्ठा कर लें तत्पश्चात् हाँथों में पुष्प लेकर भगवती महालक्ष्मी का ध्यान करें-

ध्यान-

या सा पद्मासनस्था विपुलकटितटी पद्मपत्रायताक्षी
 गम्भीरावर्तनाभिस्तनभरनमिता शुभ्रवस्त्रोत्तरीया ।
 पालक्ष्मीर्दिव्यरूपैर्मणिगणखचितैः स्नापिता हेमकुम्भैः
 सा नित्यं पद्महस्ता मम वसतु गृहे सर्वमाङ्गल्ययुक्ता ॥
 ॐ हिरण्यवर्णा हरिणीं सुवर्णरजतस्त्रजाम् ।
 चन्द्रां हिरण्ययीं लक्ष्मीं जातवेदो म आ वह ॥
 ॐ महालक्ष्म्यै नमः । ध्यानार्थं पुष्पाणि
 समर्पयामि ।

(ध्यान के लिए पुष्प अर्पित करें।)

आवाहन-

सर्वलोकस्य जननीं सर्वसौख्यप्रदायिनीम् ।
 सर्वदेवमयीमीशां देवीमावाहयाम्यहम् ॥
 ॐ तां म आ वह जातवेदो लक्ष्मीमनपगामिनीम् ।
 यस्यां हिरण्यं विन्देयं गामश्वं पुरुषानहम् ॥
 ॐ महालक्ष्म्यै नमः । महालक्ष्मीमावाहयामि,
 आवाहनार्थं पुष्पाणि समर्पयामि ।

(आवाहन के लिए पुष्प दें)

आसन-

तप्तकाञ्चनवर्णाभं मुक्तामणिविराजितम् ।
 अमलं कमलं दिव्यमासनं प्रतिगृह्यताम् ॥
 ॐ अश्वपूर्वा रथमध्यां हस्तिनादप्रमोदिनीम् ।
 श्रियं देवीपुम ह्वये श्रीर्मा देवी जुषताम् ॥
 ॐ महालक्ष्म्यै नमः । आसनं समर्पयामि ।

(आसन के लिए पुष्प दें।)

पाद-

गङ्गादितीर्थसम्भूतं गन्धपुष्पादिभिर्युतम् ।
 पादं ददाम्यहं देवि गृहाणाशु नमोऽस्तु ते ॥
 ॐ कां सोस्मितां हिरण्यप्राकारामार्द्रां ज्वलन्तीं तूसां तर्पयन्तीम् ।

पद्मेस्थितां पद्मवर्णां तामिहोप ह्वये श्रियम् ॥
ॐ महालक्ष्म्यै नमः। पादयोः पाद्यं समर्पयामि।
(चन्दन, पुष्पादियुक्त जल अर्पित करें।)

अर्घ्य-

अष्टगन्धसमायुक्तं स्वर्णपात्रप्रपूरितम्।
अर्घ्यं गृहाण महत्तं महालक्ष्मि नमोऽस्तु ते ॥
ॐ चन्द्रां प्रभासां यशसा ज्वलन्तीं श्रियं लोके देवजुष्टामुदाराम्।
तां पद्मनीमीं शरणं प्र पद्मेऽस्तक्ष्मीमे नश्यतां त्वां वृणे ॥
ॐ महालक्ष्म्यै नमः। हस्तयोरर्घ्यं समर्पयामि।
(अष्टगन्धमिश्रित जल अर्घ्यपात्र से देवी के हाँथों में दें।)

आचमन-

सर्वलोकस्य या शक्तिर्ब्रह्मविष्णवादिभिः स्तुता।
ददाम्याचमनं तस्यै महालक्ष्म्यै मनोहरम् ॥
ॐ आदित्यवर्णे तपसोऽधि जातो वनस्पतिस्तव
वृक्षोऽथ बिल्व। तस्य फलानि तपसा नुदन्तु या
अन्तरा याश्च बाह्या अलक्ष्मी ॥ ॐ महालक्ष्म्यै नमः।
आचमनीयं जलं समर्पयामि।
(आचमन के लिए जल चढ़ाएं।)

भगवती के प्रति भक्ति और प्रेमपूर्वक आसन आदि
उपचार अर्पण करने के पश्चात् उन्हें पञ्चामृत एवं रस
आदि से स्नान कराना चाहिए। श्रीमद्देवी भागवत के
अनुसार जो पुरुष गन्ने के रस से भरे हुये सैकड़ों कलशों
द्वारा भगवती महालक्ष्मी को स्नान करता है उसका फिर
जगत् में जन्म नहीं होता। भगवती महालक्ष्मी को ईख
आम और दाख आदि जितने भी रस युक्त फल हैं
उनके रस से स्नान कराने से मनुष्य कल्पयन्त क्षीर सागर
में निरन्तर स्थान पाता है तथा उसके सैकड़ों जन्मों
के उपार्जित पाप भस्मीभूत हो जाते हैं।

विभिन्न रसों से स्नान कराने के पश्चात् भगवती
महालक्ष्मी को शुद्ध जल से स्नान करायें निम्न मंत्र का
उच्चारण करें-

मन्दाकियाः समानीतैर्हमाम्भोरुहवासितैः।

स्नानं कुरुष्व देवेशि सलिलैश्च सुगन्धिभिः ॥

स्नान के उपरान्त आचमन के लिए जल अर्पित करें
तत्पश्चात् दुग्ध से स्नान करायें-

दुग्ध स्नान-

कलश में दूध भरकर भगवती को अर्पित करें-(निम्न
मंत्रोच्चार करें)

कामधेनुसमुत्पन्नां सर्वेषां जीवनं परम्।

पावनं यज्ञहेतुश्च पयः स्नानार्थमर्पितम् ॥

(ॐ महालक्ष्म्यै नमः। पयःस्नानं समर्पयामि)

दधिस्नान-

दुग्ध स्नान के उपरान्त निम्न मंत्रोच्चार करते हुये भगवती
को दही से स्नान करायें-

पयसस्तु समुद्भूतं मधुराम्लं शशिप्रभम्।

दध्यानीतं मया देवि स्नानार्थं प्रतिगृह्यताम् ॥

(ॐ महालक्ष्म्यै नमः। दधि स्नानं समर्पयामि)

घृत स्नान-

दही से स्नान कराने के उपरान्त शुद्ध जल से स्नान करायें
तत्पश्चात् घृत (घी) से स्नान करायें-

निम्न मंत्र का उच्चारण करें-

नवनीतं समुत्पन्नं सर्वसंतोषकारकम्।

घृतं तुभ्यं प्रदास्यामि स्नानार्थं प्रतिगृह्यताम् ॥

(ॐ महालक्ष्म्यै नमः। घृतस्नानं समर्पयामि)

मधुस्नान-

निम्न मंत्र का उच्चारण करते हुये किसी पात्र में शहद
लेकर भगवती को स्नान करायें--

तरुपुष्पसमुद्भूतं सुस्वादु मधुरं मधु।

तेजः पुष्टिकरं दिव्यं स्नानार्थं प्रतिगृह्यताम् ॥

(ॐ महालक्ष्म्यै नमः। मधुस्नानं समर्पयामि)

शर्करा स्नान-

गन्ने के रस से भरे कलशों अथवा गन्ने के रस से निर्मित
शक्कर से भगवती महालक्ष्मी को स्नान करायें निम्न मंत्रों
का उच्चारण करें-

इक्षुसारसमुद्भूता शर्करा पुष्टिकारिका

मलापहारिका दिव्या स्नानार्थं प्रतिगृह्यताम्

(श्री महालक्ष्म्यै नमः। शर्करा स्नानं समर्पयामि)

शर्करा स्नान के उपरान्त पुनः शुद्ध जल से भगवती को
स्नान करायें।

पञ्चामृत स्नान-

गौ के दूध, दही, घृत, शहद, और मेवा आदि के मिश्रण से बनाये हुये पञ्चामृत से भगवती को स्नान कराये

पयो दधि घृतं चैव मधुशर्करयान्वितम्।

पञ्चामृतं मयानीतं स्नानार्थं प्रतिगृह्यताम्॥

(ॐ महालक्ष्म्यै नमः। पञ्चामृतस्नानं समर्पयामि)

यदि साधक महालक्ष्मी का अभिषेक करना चाहे तो (श्री सूक्त) का पाठ करते हुये दूध, दही, गन्ने के रस, से अखण्ड जलधारा छोड़े।

गन्धोदक स्नान-

कृष्ण चन्दन, अगर कर्पूर, अष्टगंध तथा नाना प्रकार के सुगन्धित इत्रादि के मिश्रण से भगवती को स्नान कराये-

मलयाचलसम्भूतं चन्दनागरुसम्भवम्।

चन्दनं देवदेवेशि स्नानार्थं प्रतिगृह्यताम्॥

(ॐ महालक्ष्म्यै नमः गन्धोदक स्नानं समर्पयामि)

इस प्रकार विभिन्न द्रव्यों से भगवती को स्नान कराने के पश्चात् शुद्धोदक से स्नान कराकर आचमन के लिये जल अर्पित करें।

वस्त्र-

निम्न मंत्र का उच्चारण करते हुये भगवती महालक्ष्मी को दो सुन्दर रेशमी वस्त्र अर्पित करें। वस्त्र और उपवस्त्र क्रमशः निम्न मंत्रों का उच्चारण करते हुये अर्पित करें--

दिव्याम्बरं नूतन हि क्षौमं त्वति मनोहरम्।

दीयमानं मया देवि गृहाण जगदम्बिके॥

(ॐ महालक्ष्म्यै नमः वस्त्रं समर्पयामि)

तत्पश्चात् कञ्चु की आदि उत्तरीय वस्त्र अर्पित करें-

कञ्चुकीमुपवस्त्रं च नानारत्नैः समन्वितम्

गृहाण त्वं मया दत्तं मङ्गले जगदीश्वरि

(ॐ महालक्ष्म्यै नमः उपवस्त्रं समर्पयामि)

आभूषण-

देवी को रत्नजटित आभूषण अर्पित करने वाला मनुष्य दूसरे जन्म में राजा होता है साधक को चाहिए कि वह अपनी सामर्थ्य के अनुसार रत्न, हरे, जवहार आदि के आभूषण देवी को अर्पित करे

रत्नकङ्कणवैद्युत्मुक्ताहारादिकानि च।

सुप्रसन्नेन मनसा दत्तानि स्वीकुरुष्व भोः॥

(ॐ महालक्ष्म्यै नमः नानाविधानि कुण्डलकटकादीनि आभूषणानि समर्पयामि)

तदनन्तर गन्ध, चन्दन, सिन्दूर, कुंकुम, पुष्पहार, अक्षत, पुष्प, दूर्वा आदि से भगवती का पूजन करें।

महालक्ष्मी पूजन में भगवती की अंग पूजा का भी विधान है अतः रोली कुंकुम मिश्रित अक्षत व पुष्पों से निम्नानुसार एक-एक नाम मंत्र पढ़ते हुए अंग पूजा करें।

अङ्गपूजा

ॐ चपलायै नमः, पादौ पूजयामि।

ॐ चञ्चलायै नमः, जानुनी पूजयामि।

ॐ कमलायै नमः, कटिं पूजयामि।

ॐ कात्यायन्यै नमः, नाभिं पूजयामि।

ॐ जगन्मात्रे नमः, जठरं पूजयामि।

ॐ विश्ववल्लभायै नमः, वक्षःस्थलं पूजयामि।

ॐ कमलवासिन्यै नमः, हस्तौ पूजयामि।

ॐ पद्माननायै नमः, मुखं पूजयामि।

ॐ कमलपत्राक्ष्यै नमः, नेत्रत्रयं पूजयामि।

ॐ श्रियै नमः, शिरः पूजयामि।

ॐ महालक्ष्म्यै नमः, सर्वाङ्ग पूजयामि।

अष्टसिद्धि-पूजन

इस प्रकार अङ्गपूजा के अनन्तर पूर्वादि-क्रम से आठों सिद्धियों की पूजा कुङ्कुमाक्षत अक्षतों से देवी महालक्ष्मी के पास निम्नांकित मंत्रों से करें-

ॐ अणिष्णे नमः (पूर्वे), ॐ महिष्णे नमः (अग्रिकोणे), ॐ गरिष्णे नमः (दक्षिणे), ॐ लघिष्णे नमः (नैऋत्ये), ॐ प्राप्त्यै नमः (पश्चिमे), ॐ प्राकाम्यै नमः (वायव्ये), ॐ ईशितायै नमः (उत्तरे), तथा ॐ वशितायै नमः (ऐशान्याम्)।

अष्टलक्ष्मी-पूजन

तदनन्तर पूर्वादि-क्रमसे आठों दिशाओं में महालक्ष्मी के पास कुङ्कुमाक्षत अक्षत तथा पुष्पों से एक-एक नाम-मंत्र पढ़ते हुए आठ लक्ष्मियों का पूजन करें-

ॐ आद्यलक्ष्म्यै नमः, ॐ विद्यालक्ष्म्यै नमः, ॐ

सौभाग्यलक्ष्म्यै नमः, ॐ अमृतलक्ष्म्यै नमः, ॐ कामलक्ष्म्यै नमः, ॐ सत्यलक्ष्म्यै नमः, ॐ भोगलक्ष्म्यै नमः, ॐ योगलक्ष्म्यै नमः।

दक्षिणा-

हिरण्यगर्भगर्भस्थं हेमबीजं विभावसोः।
अनन्तपुण्यफलदमतः शान्तिं प्रयच्छ मे॥
ॐ तां म आ वह जातवेदो लक्ष्मीमनपगामिनीम्।
यस्यां हिरण्यं प्रभूतं गावो दास्योऽश्वान् विन्देयं पुरुषानहम्॥
ॐ महालक्ष्म्यै नमः, दक्षिणां समर्पयामि।
(दक्षिणा चढ़ायें।)

नीराजन-

चक्षुर्द सर्वलोकानां तिमिरस्य निवारणम्।
आर्तिव्यं कल्पितं भक्त्या गृहाण परमेश्वरि॥
ॐ महालक्ष्म्यै नमः, नीराजनं समर्पयामि।
(आरती करे तथा जल छोड़े, हाथ धो लें।)

प्रदक्षिणा-

यानि कानि च पापानि जन्मान्तरकृतानि च।
तानि सर्वाणि नश्यन्तु प्रदक्षिणपदे पदे॥
ॐ महालक्ष्म्यै नमः, प्रदक्षिणां समर्पयामि।
(प्रदक्षिणा करें।)

प्रार्थना-

हाँथ जोड़कर प्रार्थना करें-
सुरासुरेन्द्रादिकिरीटमौक्तिकै-
युक्तं सदा यत्तव पादपङ्कजम्।
परावरं पातु वरं सुमङ्गलं
नमामि भक्त्याखिलकामसिद्धये॥
भवानि त्वं महालक्ष्मीः सर्वकामप्रदायिनी।
सुपूजिता प्रसन्ना स्यान्महालक्ष्मि! नमोऽस्तु ते॥
नमस्ते सर्वदेवानां वरदासि हरिप्रिये।
या गतिस्त्वत्प्रपन्नानां सा मे भूयात् त्वदर्चनात्॥
ॐ महालक्ष्म्यै नमः, प्रार्थनापूर्वकं नमस्कारान् समर्पयामि।
(प्रार्थना करते हुए नमस्कार करें)

समर्पण-

पूजन के अन्त में- (कृतेनानेन पूजनेन भगवती महालक्ष्मीदेवी प्रीयताम्, न मम।) (यह वाक्य उच्चारण कर समस्त पूजन-कर्म भगवती महालक्ष्मी को समर्पित करें तथा जल गिरायें।)

प्रधान आरती

इस प्रकार भगवती महालक्ष्मी तथा उनके सभी अङ्ग-प्रत्यङ्गो एवं उपाङ्गों का पूजन कर लेने के अनन्तर प्रधान आरती करनी चाहिये। इसके लिये एक थाली में स्वस्तिक आदि माङ्गलिक चिह्न बनाकर अक्षत तथा पुष्पों के आसन पर किसी दीपक आदि में घृतयुक्त बत्ती प्रज्वलित करें। एक पृथक् पात्र में कर्पूर भी प्रज्वलित कर वह पात्र भी थाली में यथास्थान रख लें, आरती-थालका जला से प्रोक्षण कर लें। पुनः आसन पर खड़े होकर अन्य पारिवारिक जनों के साथ घण्टानादपूर्वक निम्न आरती गाते हुए साङ्गमहालक्ष्मीजी की मङ्गल आरती करें-

श्री लक्ष्मीजीकी आरती

ॐ जय लक्ष्मी माता, (मैया) जय लक्ष्मी माता।
तुमको निसिदिन सेवत हर-विष्णू-धाता॥ॐ॥
उमा, रमा, ब्रह्माणी, तुम ही जग-माता॥
सूर्य-चन्द्रमा ध्यावत, नारद ऋषि गाता॥ॐ॥
दुर्गारूप निरञ्जनि, सुख-सम्पत्ति-दाता।
जो कोई तुमको ध्यावत, ऋधि-सिधि-धन पाता॥ॐ॥
तुम पाताल-निवासिनि, तुम ही शुभदाता।
कर्म-प्रभाव-प्रकाशिनि, भवनिधिकी त्राता॥ॐ॥
जिस घर में तुम रहती, तहाँ सब सदगुण आता।
सब सम्भव हो जाता, मन नहीं घबराता॥
तुम बिन यज्ञ न होते, वस्त्र न हो पाता।
खान-पानका वैभव सब तुमसे आता॥ॐ॥
शुभ-गुण-मन्दिर सुन्दर, क्षीरोदधि-जाता।
रत्न चतुर्दश तुम बिन कोई नहीं पाता॥ॐ॥
महालक्ष्मी (जी) की आरति, जो कोई नर गाता।
उर आनन्द समाता, पाप उतर जाता॥ॐ॥

★

सुख

दुन्दुभकृत महालक्ष्मी पूजन

देव, दानव व मनुष्य सभी को भगवती लक्ष्मी की कृपा प्राप्ति की लालसा रहती है। श्रीविहीन जीवन का कोई अस्तित्व नहीं है। सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड उन्हीं भगवती महालक्ष्मी की कृपा पर निर्भर है। शास्त्र साक्षी हैं कि जब-जब देवताओं पर कोई संकट आया है महालक्ष्मी की आराधना से ही वे संकट से उबर सके हैं। स्वर्ग का सिंहासन छिनने के बाद तथा राक्षसों द्वारा देवलोक से निष्कासित कर दिये जाने के बाद भगवान श्री हरि के परामर्श से देवताओं ने समुद्र मंथन किया और भगवती लक्ष्मी का प्राकट्य हुआ उस समय देवराज इन्द्र ने ब्रह्मा जी द्वारा बतायी हुयी वेदोक्त विधि से सोलह उपचारों से सहस्र दल वाले कमल की कर्णिकाओं पर विराजमान शरद पूर्णिमा के करोड़ों चन्द्रमाओं की शोभा का हरण करने वाली भगवती महालक्ष्मी का पूजन किया।

श्रीमद् देवी भागवत में वर्णित उक्त दुर्लभ पूजन विधि को यहां प्रस्तुत किया जा रहा है। सर्वप्रथम देवराज इन्द्र ने देवी का निम्नानुसार ध्यान किया-

परमपूज्या भगवती महालक्ष्मी सहस्र दल वाले कमल की कर्णिकाओं पर विराजमान हैं, उनकी उत्तम कांति शरद पूर्णिमा के करोड़ों चन्द्रमाओं की शोभा का हरण कर लेती है। ये परम साध्वी देवी स्वयं अपने तेज से प्रकाशित हो रही हैं। इन मनोहर देवी का दर्शन पाकर मन आनन्द से खिल उठता है। ये मूर्तिमती होकर संतप्त सुवर्ण की शोभा धारण किये हुये हैं। रत्नमय भूषण इनकी छवि बढ़ा रहे हैं इन्होंने पीताम्बर पहन रखा है। इन प्रसन्न बदन वाली भगवती महालक्ष्मी के मुख पर मुस्कान छा रही है। ये

सदा युवावस्था से सम्पन्न रहती हैं इनकी कृपा से सम्पूर्ण सम्पत्तियां सुलभ हो जाती हैं ऐसी कल्याण स्वरूपिनि भगवती महालक्ष्मी की मैं उपासना करता हूँ।

इस प्रकार ध्यान कर देवराज ने निम्नानुसार सोलह विविध उपचारों से देवी का पूजन किया।

प्रशस्तानि प्रकृष्टानि वराणि विविधानि च,
अमूल्यरत्नसारं च निर्मितं विश्व कर्मणा।

आसनं च विचित्रं च महालक्ष्मि प्रगृह्णताम्॥

भगवती महालक्ष्मी! जो अमूल्य रत्नों का सार है तथा विश्वकर्मा जिसके निर्माता हैं ऐसा यह विचित्र आसन स्वीकार कीजिए।

शुद्धं गङ्गोदकमिदं
सर्ववन्दित मीप्सितम्।
पापेधमवह्निरूपं च
गृह्यतां कमलालये॥

कमलालये! इस शुद्ध गंगा को सब लोग मस्तक पर चढ़ाते हैं सभी को इसे पाने की इच्छा लगी रहती

है, पाप रूपी ईधन को जलाने के लिए यह अग्नि स्वरूप है आप इसे पाद्य रूप में स्वीकार करें।

पुष्प चन्दन दूर्वादिसंयुतं जाह्नवीजलम्।

संद्भुगर्भस्थितं स्वर्ध्वं ग्रह्यतां पद्मवासिनी॥

पद्मवासिनी शङ्ख में पुष्प, चन्दन, दूर्वा आदि श्रेष्ठ वस्तुयें तथा गङ्गाजल रखकर अर्घ्य प्रस्तुत है इसे ग्रहण कीजिए।

सुगन्धिपुष्पतैलं च सुगन्धामलिकीफलम्।

देहसौन्दर्यबीजं च गृह्यतां श्री हरेः प्रिये॥

श्री हरि प्रिये! यह उत्तम गंध वाले पुष्पों से सुवासित तैल तथा सुगन्धपूर्ण आमलकी चूर्ण शरीर की सुन्दरता



बढ़ाने का परम साधन है आप इस स्नानोपयोगी वस्तु को स्वीकार करें।

कार्पासजं च कृमिजं वसनं देवि गृह्यताम्।

रत्नस्वर्णविकारं च देह भूषाविवर्धनम्॥

शौभायै श्रीकरं रत्नं भूषणं देवि गृह्यताम्।

इन कपास तथा रेशम के सूत्र से बने हुये वस्त्रों को आप ग्रहण कीजिए। देवी यह भूषण रत्न और सुवर्ण का विकृत रूप हैं इसे धारण करने से शरीर की शोभा अतिशय बढ़ जाती है यह सम्पूर्ण सुन्दरता का परम कारण है, पहनते ही शोभा निखर उठती है अतः परम सुशोभित होने के लिए आप इसे ग्रहण कीजिए।

सर्वसौन्दर्यबीजं च सद्यः शोभाकरं परम्।

वृक्षनिर्यासरूपं च गन्धद्रव्यादि संयुतम्॥

श्री कृष्णकान्ते धूपं च पवित्रं प्रति गृह्यताम्।

सुगन्धियुक्तं सुखदं चन्दनं देवि गृह्यताम्॥

श्री कृष्णकान्ते वृक्ष का रस सूखकर इस रूप में परिणित हो गया है इसमें सुगन्धित द्रव्य मिला दिये गये हैं ऐसा यह पवित्र धूप स्वीकार कीजिए। देवी सुखदायी एवं सुगन्धि युक्त चन्दन सेवा में समर्पित है स्वीकार करें।

जगच्चक्षुःस्वरूपं च पवित्रं तिमिरापहम्।

प्रदीपं सुखरूपं च गृह्यतां च सुरेश्वरि॥

सुरेश्वरी! जो जगत के लिए चक्षु स्वरूप है जिसके सामने अंधकार टिक नहीं सकता तथा जो सुख स्वरूप है ऐसे इस प्रज्वलित दीप को स्वीकार कीजिए।

नानोपहार रूपं च नानारससमन्वितम्।

अतिस्वादुकरं चैव नैवेद्यं प्रतिग्रह्यताम्॥

हे देवि! यह नाना प्रकार का उपहार स्वरूप नैवेद्य अत्यन्त स्वादिष्ट है इसमें विविध रस भरे हैं इसे स्वीकार कीजिए।

अन्नं ब्रह्मस्वरूपं च प्राणरक्षणकारणम्।

तुष्टिदं पुष्टिदं चैव द्वैव्यन्नं प्रतिगृह्यताम्॥

देवि! अन्न को ब्रह्मस्वरूप माना गया है, प्राण की रक्षा इसी पर निर्भर है तुष्टि और पुष्टि प्रदान करना इसका सहज गुण है आप इसे ग्रहण कीजिए।

शाल्यन्नजं सुपक्वं च सर्करागव्य संयुतम्।

स्वादुयुक्तं महालक्ष्मि परमान्नं प्रगृह्यताम्॥

महालक्ष्मी! यह उत्तम पकवान चीनी एवं घृतसंयुक्त अगहनी चावल से तैयार है इसे आप स्वीकार कीजिए।

शर्करागव्य पक्वं च सुस्वादु सुमनोहरम्।

मया निवेदितं भक्त्या स्वस्तिक प्रतिगृह्यताम्॥

शर्करा और घृत में सिद्ध किया हुआ परम मनोहर एवं स्वादिष्ट स्वस्तिक नामक नैवेद्य है उसे आपकी सेवा में समर्पित किया है इसे स्वीकार करें।

नाना विधानि रम्याणि पक्कानानि फलानि च

सुरभिस्तन संत्यक्तं सुस्वादु सुमनोहम्

मर्त्यामृतं सुगव्यं च गृह्यताम् मच्चुत प्रिये।

अत्युत प्रिये! ये अनेक प्रकार के सुन्दर पके हुये फल हैं तथा सुरभी गौ के स्तन से निकला हुआ मृत्युलोक के लिए अमृत स्वरूप परम सुस्वादु दुग्ध है इन पदार्थों को ग्रहण कीजिए।

सुस्वादु रससंयुक्तमिक्षु वृक्ष समुद्भवम्,

अग्नि पक्कमतिस्वादु गुडं च प्रतिगृह्यताम्।

देवी! ईख के स्वाद भरे रस को अग्नि पर पकाकर बनाया गया यह गुड़ है इसे स्वीकार कीजिए।

यवगोधूमसस्यानां चूर्णं रेणु समुद्भवम्,

सुपक्वं गुडगव्यक्तं मिष्ठानं देवि गृह्यताम्।

देवी! जौ गेहूं आदि के चूर्ण से तैयार किया हुआ यह मिष्ठान है गुड़ और घृत के साथ अग्नि पर यह सिद्ध किया गया है इसे आप स्वीकार करें।

सस्यचूर्णोद्भवं पक्वं स्वस्तिकादि समन्वितम्,
मया निवेदितं भक्त्या नैवेद्यं प्रतिगृह्यताम्।
धान्य के चूर्ण से बनाये गये स्वस्तिक आदि चिन्हों से
युक्त इस पक्कन को भक्तिपूर्वक आपकी सेवा में समर्पित
किया गया है स्वीकार कीजिए।

शीतवायु प्रदं चैव दाहे च सुखदं परम्।
कमले गृह्यतां चेदं व्यजनं श्वेतचामरम्॥
कमले! शीतल वायु प्रदान करने वाला यह व्यंजन तथा
स्वच्छ चर्वेर उष्णकाल के लिए परम सुखदायी है इसे ग्रहण
कीजिए।

ताम्बूलं च वरं रम्यं कर्पूरादिसुवासितम्।
जिह्वाजाडयच्छेदकरं ताम्बूलं प्रति गृह्यताम्॥
यह उत्तम ताम्बूल कर्पूर आदि सुगन्धित वस्तुओं से
सुवासित एवं जिह्वा को स्फूर्ति प्रदान करने वाला है इसे
आप स्वीकार कीजिए।

सुवासितं सुशीतं च पिपासानाशकारणम्।
जगज्जीवन रूपं च जीवनं देवि गृह्यताम्॥
देवी! प्यास को शांत करने वाला अत्यन्त शीतल
सुवासित एवं जगत के लिए जीवन स्वरूप यह जल स्वीकार
कीजिए।

नाना ऋतुषु निर्माणं बहुशोभाश्रयं परम्।
सुरभूपप्रियं शुद्धं माल्यं देविगृह्यताम्॥
देवी, विविध ऋतुओं के पुष्पों से गूंथी गयी असीम
शोभा की आश्रय तथा देवराज के लिए भी परम प्रिय इस
माला को स्वीकार करें।

शुद्धिदं शुद्धरूपं च सर्वमङ्गलमङ्गलम्।
गन्धवस्तूद्भवं रम्यं गन्धं देवि प्रगृह्यताम्॥
यह शुद्धि प्रदान करने वाला समस्त मङ्गलों का भी
मङ्गल सुगन्धित वस्तुओं से सम्पन्न दिव्य चन्दन आपकी

सेवा में समर्पित है स्वीकार कीजिए।

पुण्यतीर्थोदकं चैव विशुद्धं शुद्धिदं सदा।
गृह्यताम् कृष्णकान्ते त्वं रम्यमाचमनीयकम्॥
कृष्ण कान्ते। यह पवित्र तीर्थ जल स्वयं शुद्ध तथा अन्य
को भी सदा शुद्ध करने वाला है इसे आप आचमन के
रूप में स्वीकार करें।

रत्नसारादिनिर्माणं पुष्प चन्दन चर्चितम्।
वस्त्रभूषणभूषाढ्यं सुतल्पं देवि गृह्यताम्॥
यह अमूल्य रत्नों से बनी हुयी सुन्दर शय्या वस्त्र और
आभूषणों से सजायी गयी है पुष्प और चन्दन से चर्चित
है इसे आप स्वीकार करें।

यद्यद द्रव्यमपूर्वं च पृथिव्यामपि दुर्लभम्।
देवभूषार्हभोग्यं च तद् द्रव्यं देवि गृह्यताम्॥
पृथ्वी पर जितने भी अपूर्व द्रव्य शरीर को सजाने के
लिए परम उपयोगी है वे दुर्लभ वस्तुयें भी आपकी सेवा
में उपस्थित है स्वीकार करें।

इस प्रकार उक्त विधि से भक्ति पूर्वक भगवती महालक्ष्मी
का पूजन कर देवराज इन्द्र ने उनके मूल मंत्र का सवा
लाख जप किया जिससे उन्हें मंत्र सिद्धि प्राप्त हो गयी।
कुबेर ने इसी दुर्लभ मंत्र से भगवती महालक्ष्मी की आराधना
कर परम ऐश्वर्य प्राप्त किया। इसी महामंत्र के प्रभाव से
प्रियव्रत उत्तानपाद व राजा केदार को राजेन्द्र कहलाने का
सौभाग्य प्राप्त हुआ। साधकों के कल्याण के लिए यह दुर्लभ
मंत्र यहाँ दिया जा रहा है। दीपावली के शुभ अवसर पर
उपरोक्त विधि से पूजन व मंत्र जप करके आप भी अखण्ड
सौभाग्य धन-धान्य, यश, प्रसिद्धि प्राप्त कर सकते हैं जीवन
की सार्थकता भी इसी में है।

मंत्र

ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ऐं कमलवासिन्यै स्वाहा॥

श्री गायत्री रहस्यम्

सनातन धर्म के चार प्रमुख आधार हैं जिन्हें हम गंगा, गीता, गौ और गायत्री के नाम से उच्चारित करते हैं। इन चार स्तम्भों पर ही समस्त आर्य संस्कृति टिकी हुई है। शक्तिशाली शरीर अन्य सभ्यताओं में बहुतायत पाये जाते हैं। विश्व की सभी सभ्यताएँ शक्तिशाली शरीरों से सुसज्जित हैं। इस पृथ्वी पर अनेकों वंश एवं अनेकों वर्ण के मनुष्य विराजमान हैं परन्तु उन सबमें आर्य ही सर्वश्रेष्ठ माने गये हैं। आर्य सर्वश्रेष्ठ क्यों हैं? किसी भी सभ्यता या मनुष्यों के वर्ग समूह की श्रेष्ठता उसमें प्रारम्भ से लेकर वर्तमान तक उत्पन्न हुए श्रेष्ठ महापुरुषों के कारण ही निर्मित होती है। आर्य सभ्यता में अनन्तकाल से लेकर अब तक एक से एक श्रेष्ठ महामानव, महाअवतार, युगान्तकारी, युग प्रवर्तक, सम्पूर्ण विद्रोही, देवतुल्य एवं देवत्व से युक्त महापुरुषों, ऋषियों, राजाओं, मुनियों, त्यागियों, तत्त्वज्ञानियों, दर्शन शास्त्रियों इत्यादि का प्रादुर्भाव हो चुका है। भगवान श्रीकृष्ण ने गीता में स्पष्ट रूप से कहा है कि मैं वहीं पर विराजमान होता हूँ जहाँ पर सर्वश्रेष्ठता होती है इसीलिए विष्णु के सम्पूर्ण अवतार आर्य सभ्यता में ही अवतरित हुए हैं। अगर शरीर स्वस्थ है और मस्तिष्क अविकसित तो फिर मनुष्य एक सामान्य पशुता के गुणों से भरपूर जैविक संरचना है जिसका उद्देश्य सम्पूर्ण जीवन बस कुछ प्रारम्भिक क्रियाएँ जैसे कि खाना-पीना, प्रजनन और युद्ध इत्यादि तक सीमित रहती है।



सीमितता पशुता का द्योतक है। सिंह एक वन में ही रहता है, वहीं पैदा होता है, वहीं मर जाता है। श्वान एक गली में जन्म लेता है और सम्पूर्ण जीवन गली के चौराहे पर बिताता हुआ वहीं मृत्यु को प्राप्त हो जाता है। यह सब भयभीत, सीमित एवं आधे-अधूरे मस्तिष्क की देन है। आजकल यही तथाकथित विचार मनुष्यों के समाज को भी दूषित कर रहा है। एक छोटा सा घर, एक छोटा सा फ्लैट तीन कमरे का दड़वा, एक मियाँ-बीवी और दो बच्चे बस सारी दुनिया, सारा जीवन, सारी ऊर्जा दस x दस के कमरे में सिमट कर रह गयी है। स्वार्थी जीवन मनुष्य का पर्याय बन गया है। संयुक्त परिवार, देश, समाज और विश्व को भूलकर बस सबकुछ एक फ्लैट में सिमट गया है। यह जिन्दगी चूहे के समान है। मूषक ब्रह्माण्ड का सबसे कायर प्राणी है। सबसे अनुत्पादक एवं विध्वंसक प्राणी है। इस तरह की कुप्रवृत्ति पाश्चात्य देशों की कलुषित, कुत्सित एवं पशुतापूर्ण सोच का नतीजा है। मनुष्य को छोटा बनाने की, बौना बनाने की प्रक्रिया है। यह हास का प्रतीक है। आर्य सभ्यता के विपरीत की यह विचारधारा है।

आर्यों ने कहा समस्त पृथ्वी हमारी माता है, समस्त पृथ्वी के हम अधिकारी हैं, समस्त ब्रह्माण्ड हमारा है। यह है फैलने की कला। नवीनता लिए हुए जीवन जीने की कला। ऊर्जा से लबरेज एक अति स्वस्थ एवं जिज्ञासु व्यक्तियों के समूह का उद्घोष। यही कारण है कि कालान्तर आर्य

मध्य एशिया, भारत, जर्मनी, लेटिन अमेरिका, भूटान, तिब्बत से लेकर सुदूर अमेरिकी महाद्वीप एवं अफ्रीका के अन्य हिस्सों में पल्लवित हुए, फले-फूले। सोच में विस्तृतता, पावों में इतनी ताकत कैसे आयीं में उत्पन्न हुई? कैसे आयीं में प्रभु श्रीराम जैसे अवतारी उत्पन्न हुए? जिन्होंने अश्वमेध यज्ञ के द्वारा सम्पूर्ण पृथ्वी को एक सूत्र में पिरो दिया। आयीं में ही भगवान विष्णु का वामन अवतार भी हुआ जिन्होंने ढाई पाग में पृथ्वी तो क्या समस्त ब्रह्माण्ड को लांघ दिया। आयीं में ही त्रिकाल दृष्टा ऋषि, स्वप्न साधक, ज्योतिषी, अंक शास्त्री इत्यादि सभी तो उत्पन्न हुए। आयीं की इस सफलता के पीछे शरीर के साथ-साथ परमात्मा की परम देन मस्तिष्क की भी सजलता थी। आयीं ने मस्तिष्क का विकास किया। मस्तिष्क की एक-एक क्रिया को भली-भांति समझा, मस्तिष्क की एक-एक कमजोरी को दूर करने के लिए ध्यान, प्राणायाम, तंत्र इत्यादि अनेकों प्राच्य विद्याओं का अविष्कार किया। मस्तिष्क और शरीर की लयात्मकता बनाए रखने के लिए योग के गूढ़ सिद्धांतों को खोजा। आयीं ने खोजा ही नहीं बल्कि इन विद्याओं में चरमता और असीमितता के साथ पारंगतता हासिल की। मस्तिष्क को उन्होंने केवल अंग मात्र नहीं समझा। उन्होंने मस्तिष्क से काम लेना भी सीखा। एक-एक कोशिका के विज्ञान को समझा। ध्यान रहे ज्ञान और विज्ञान अध्यात्म की ही शाखा हैं। ज्ञान और विज्ञान का तात्पर्य अध्यात्म के उस स्तर से है जिसका कि मनुष्य ने पता लगा लिया है परन्तु आर्य नकारात्मक एवं सीमितता की भावना से कभी ग्रसित नहीं हुए। वे समझ गये कि जो कुछ प्राप्त किया है वह तो मात्र अंशात्मक है। ब्रह्माण्ड असीमित है, शक्तियाँ असीमित हैं, ज्ञान असीमित है अतः खोजें भी असीमित होनी चाहिए। आप भी असीमित बनिएं। निरंतर आगे बढ़िये आगे बढ़ना ही नवीनता है, स्थान परिवर्तन भी करना पड़ेगा। मनुष्य चूहा नहीं है कि बस बिल में दुबका रहे। समस्त पृथ्वी को निहारिए। सर उठाकर ब्रह्माण्ड में देखिए, यात्राएँ कीजिए, कुछ कर गुजरिए। यही आपके वंशज, आपके पूर्वज महान आयीं की जीवन शैली है। एक मकान, एक दुकान एवं अंगुलियों पर गिने जाने वाले रक्त सम्पत्तियों के लिए जिओगे तो

फिर मृत्यु के समय मुश्किल से 10 लोग भी आपकी शव यात्रा में नहीं होंगे। कुछ ही वर्षों में भुला दिए जाओगे। इसे कहते हैं आधा-अधूरा जीवन, अपरिपक्व मस्तिष्क से युक्त मनुष्य, अतृप्त मृत्यु। अब सवाल उठता है कि आयीं में इतनी शक्ति आयी कहाँ से, ऐसा कौन सा सूत्र उनके हाथ लग गया जिससे कि वे जीवन के सभी क्षेत्रों में तेजस्वी हो गये। ऐसी भी शक्ति ब्रह्माण्ड में है। युगान्तकारी, परिवर्तनकारी मंत्र भी उपलब्ध हैं। आपको तो बस इसका अनुसंधान करना है एवं इसे अपने अंदर प्रतिष्ठित करना है। इसे अपने अंदर क्रियाशील करना है और इस महामंत्र का नाम है चौबीस अक्षरों का गायत्री मंत्र। यह मंत्र उस महाशक्ति से सम्पुटित है जिसके द्वारा मस्तिष्क उध्वगामी होता है, संस्कारित होता है, शक्तिशाली एवं क्रियाशील होता है। यह मंत्र ब्रह्माण्ड की प्रत्येक शक्ति को, प्रत्येक रहस्य को मस्तिष्क से संस्पर्शित करा देता है। यही कारण है कि योगी योगेश्वर प्रभु श्रीकृष्ण ने गीता में इशारा किया है कि मंत्रों में मैं गायत्री मंत्र हूँ अर्थात् आध्यात्मिक जगत की सर्वश्रेष्ठ स्तुति। है गायत्री स्तुति आप सनातन धर्म के किसी भी ग्रंथ को उठाकर देख लीजिए प्रत्येक पूजन में सर्वप्रथम गायत्री मंत्र का जाप अवश्यम्भावी है। प्रत्येक गुरु दीक्षा के समय गुरु मंत्र के साथ गायत्री मंत्र अवश्य देता है। ऐसा इसलिए किया जाता है कि मस्तिष्क के अंदर उस आधारभूत शक्ति का स्थापन किया जा सके जिससे कि मस्तिष्क की उर्वरता पुनः बढ़ सके अनेकों क्रियाओं से लब्ध अष्ट भ्रमित एवं सुप्त हो गई चेतना शक्ति, विचार शक्ति एवं तर्क शक्ति पुनः एकीकृत हो सके। नकारात्मकता की प्रवृत्ति से ग्रसित बुद्धि की ग्रंथि पुनः श्राप मुक्त हो सके। नकारात्मकता की शक्ति अनुत्पादक है अर्थात् यह स्वयं का भक्षण करने की विनाशक प्रवृत्ति है। पशु स्वयं के बच्चों को खा जाता है। पशुरूपी गुणों से युक्त मनुष्य अपनी नकारात्मक सोच से स्वयं के मस्तिष्क का गुड़ गोबर कर लेता है। नकारात्मक कारनामों से रावण के समान स्वयं के साथ-साथ सारे कुल, वंश का सर्वनाश कर बैठता है। कहावत है कि-

सत्तर पुत्र बहत्तर नाती।

उस रावण घर दिवा न खाती।

अर्थात् मस्तिष्क इतना विकृत

समृद्धशाली, वैभवशाली राक्षस जाति का अंत रावण के कारनामों से हो गया। सीधी सी बात है रावण का मस्तिष्क सात्विक नहीं था। सात्विक कैसे होता वह तो गायत्री मंत्र का उल्टा मंत्र जपता था। उसका मस्तिष्क तो स्त्री में लिप्त था, उसके मस्तिष्क की खुराक वासना थी। यही सब तो पतन के कारण हैं। सारी समस्याओं के पीछे बीमार, सीमित, कुण्ठित एवं सड़े-गले मस्तिष्क दिखाई पड़ते हैं। आज के युग में तो मस्तिष्क इतने सड़ गल गये हैं कि मनुष्य के मस्तिष्क की शक्ति मेंढक जैसे प्राणी के मस्तिष्क से भी कम हो गई है। जब मस्तिष्क विचार ही नहीं पकड़ पा रहे हैं तो फिर अध्यात्म कहाँ से स्थापित होगा। जिस समस्या का समाधान कुछ सेकेण्ड में स्वयं मस्तिष्क दे सकता है उसी को समझते-समझते मनुष्य को वर्षों लग जाते हैं। कारण सीधा सा है मस्तिष्क के सोचने, कार्य करने, समझने, विचार करने एवं पुनः स्फूर्तिवान होने की रफ्तार घट गई है। रफ्तार क्यों घट गई है? मस्तिष्क क्यों धीमा पड़ गया है? संवेग क्यों आसानी से मस्तिष्क ग्रहण नहीं कर पाता है? सीधा सा कारण है सब कुछ मस्तिष्क के अंदर अवरोधित हो गया है ठीक उसी प्रकार से जिस प्रकार ऊबड़-खाबड़ सड़क पर हिचकोले खाते हुए वाहन चलता है। वैसे ही मस्तिष्क की प्रत्येक क्रिया चल रही है। गायत्री रूपी महाशक्ति को जिस दिन आपने आत्मसात कर लिया उस दिन आप आधी लड़ाई जीत गये। मस्तिष्क को समझना होगा। स्वयं की क्रियाओं का सूक्ष्मताओं के साथ निरीक्षण करना होगा। सीमितता के तथाकथित सामाजिक एवं पारिवारिक सिद्धांत को लात मारनी होगी तब कहीं जाकर ऋषि युक्त मस्तिष्क के आप स्वामी होंगे। स्वामी शब्द को गम्भीरता से लीजिए। आपको स्वामी बनना होगा स्वयं के मस्तिष्क का। स्वामी आदेश देता है। स्वामी नियंत्रण करता है। स्वामी दण्ड देता है। स्वामी का मतलब है श्रेष्ठता इसके विपरीत गुलामी और दासता है। कोई किसी का गुलाम नहीं होना चाहता। सर्वप्रथम स्वयं की गुलामी दूर कर लो। स्वयं की दासता को मार भगाओ। ऐसा मस्तिष्क किस काम का जो शाम होते ही शराब मांगे। यह तो निम्न श्रेणी की दासता है। इसे कहते हैं आदी हो

जाना। आज के युग में ऐसे ही मनुष्यों की भरमार है। खुद की गुलामी से तो मुक्त हुए नहीं स्वतंत्रता की बात, विद्रोह की बात करके थोड़ी बहुत अपने आपको सात्वता दे देते हैं। ऊपर जो कुछ भी कहा गया है यह सब गायत्री मंत्र का मर्म है। हर युग में इसी मर्म को विभिन्न तरीके से व्यक्त किया गया है। प्रत्येक ऋषि-मुनि साधक एवं गुरु ने गायत्री मंत्र को धारण किया है। शारीरिक क्रियाओं एवं भौतिक कर्मों के आधार पर कोई मनुष्य पूजनीय नहीं बन सकता उसके लिए अद्वैत आध्यात्मिक क्रियाओं की जरूरत है। शून्य से उत्पत्तिकरण, अदृश्य से सदृश्य करने की क्षमता मस्तिष्क में तभी विकसित होगी जब वह गायत्री शक्ति से संचालित होगा। संचालन अनेकों शक्तियों से हो सकता है परन्तु ध्यान रहे कोयले या तेल से चलने वाला इंजन पृथ्वी के गुरुत्व को नहीं भेद सकता। पृथ्वी को लांघने के लिए अति परिष्कृत अणु रूपी ईंधन की जरूरत होती है। जब पृथ्वी को लांघने के लिए अणु रूपी ईंधन की जरूरत है तो फिर मानसिक एवं अधि भौतिक शरीर की क्रियाशीलता के लिए तो परम सात्विक गायत्री शक्ति ही आत्मसात करनी होगी। आज के युग का एक उदाहरण देता हूँ। गायत्री शक्ति पीठ के संस्थापक गुरुदेव श्रीराम शर्मा जी आचार्य गायत्री के परम उपासक रहे हैं। मथुरा के एक छोटे से कमरे से इस कलियुग में गायत्री की उपासना प्रारम्भ की। गायत्री की अनन्य कृपा से सभी सूक्ष्मआद्य ऋषि शक्तियों ने इतनी कृपा, सहयोग एवं सिद्धियाँ प्रदान की कि देखते ही देखते कुछ वर्षों में ही उन्होंने हजारों की संख्या में अमूल्य ग्रंथ लिख डाले। करोड़ों भटकते हुए लोगों को दीक्षित कर दिया। देखते ही देखते लाखों परिवार संस्कारित एवं शुद्ध हो गये। कितनी ज्यादा सात्विकता मात्र एक ऋषि तुल्य शरीर ने उत्पन्न कर दी, कितना बड़ा कार्य कर दिया। जिस कार्य को पिछले 50 वर्षों में इस देश की तथाकथित राजनैतिक, सामाजिक एवं प्रशासनिक संस्थाएँ नहीं कर पायीं वह कार्य मात्र एक ऋषि मस्तिष्क ने सम्पन्न कर दिया। इसे कहते हैं चमत्कार। इसे कहते हैं सनातन एवं वेदान्ती मस्तिष्क की शक्ति। वेदान्ती एवं सनातन मस्तिष्क अगर वास्तव में जागृत

एवं क्रियाशील हो उठे तो फिर युग परिवर्तन निश्चित है। इसे कहते हैं शंकराचार्य का अवतरण। मेरे गुरु (श्री निखिलेश्वरानंद जी महाराज) भी इसी श्रेणी में आते हैं।

इस ब्रह्माण्ड का इतिहास अरबों-खरबों वर्ष पुराना है। इन अरबों खरबों वर्ष में न जाने कितने अद्भुत संयोजन ब्रह्माण्ड में उत्पन्न हुए और विलीन हुए। एक से एक विलक्षण एवं विहंगम और विचित्र चित्र ब्रह्माण्ड के पटल पर आकृति लेते रहे हैं परन्तु जैविक मस्तिष्क के रूप में एक अति दुर्लभ संरचना अपने आप में अनोखी है। ब्रह्माण्ड को इस पर विराज है मस्तिष्क का निर्माण अनेकों ब्रह्माण्डीय क्रियाओं का फल है। मस्तिष्क के रूप में जैविक कोशिकाओं का यंत्रमय गठन इतना उन्नत है कि इसकी शक्ति किसी भी ग्रह के धरातल को बदल सकती है। मस्तिष्क से ही तमाम यंत्र प्रादुर्भाव में आये हैं। रेलगाड़ी, राकेट, औषधि शास्त्र इत्यादि अनेकों या सभी प्रकार का ज्ञान मस्तिष्क से ही संस्पर्शित हो आकार ले सका। मस्तिष्क की क्षमता अनंत है। जैविक मस्तिष्क चाहे तो चन्द्रमा की सतह पर जी सकता है, मंगल के धरातल को बदल सकता है। सूर्य की परिक्रमा कर सकता है। यह सब मस्तिष्क भौतिक रूप से भी सम्पन्न कर सकता है तो वहीं मानसिक, आत्मिक एवं परादैहिक प्रक्रिया के द्वारा भी सम्पन्न कर सकता है। ध्यान रहे जैविक मस्तिष्क केवल भौतिक क्रियाओं के लिए ही नहीं है। ऐसा सोचना मूर्खता की निशानी है। कुछ हद तक मस्तिष्क नियंत्रण का केन्द्र है इस ब्रह्माण्ड में। जो मस्तिष्क आवश्यकता पड़ने पर हाथों को पंखों में ढाल सकता है, जरूरत पड़ने पर फेंफड़ों को पानी में श्वास लेना सिखा सकता है वही मस्तिष्क आने वाले समय में जीवन को अन्य नक्षत्र मण्डलों में भी स्थापित करने में भी सक्षम है। मस्तिष्क की क्षमता एवं प्रतिभा के मूल में है गायत्री छंद की शक्ति एवं गायत्री छंद की शक्ति के मूल में ब्रह्मा के एकोऽहं बहुस्याम होने की स्फूर्णा अर्थात् एक ब्रह्म शक्ति से अनेकों स्वरूप में ब्रह्म के स्थापित होने की इच्छा। यही तो मूलभूत चिन्तन है मस्तिष्क का। मस्तिष्क कभी भी मरना नहीं चाहता है उसके अंदर सबसे प्रबलतम इच्छा अमृत्यु की है, बस इसी प्रबलतम इच्छा के चलते ही मस्तिष्क हमेशा जीवित रहता

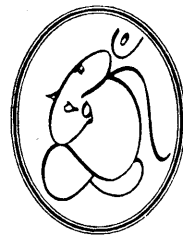
है, नवीन रूप धरता है, कपड़े के समान एक खोपड़ी से निकलकर दूसरी खोपड़ी में स्थापित होता रहता है। जरूरत पड़ने पर नवीन खोपड़ी का भी निर्माण कर लेता है। एक से अनेक होने की प्रारम्भिक एवं मूलभूत आवश्यकता ही मस्तिष्क को सम्प्रेषण शक्ति प्रदान करती है। सम्प्रेषण मस्तिष्क की मूलभूत जरूरत है। मस्तिष्क सम्प्रेषण के लिए भी बाह्येन्द्रियों एवं नाना प्रकार की अंत्येन्द्रियों की चुपचाप संरचना करता रहता है। मस्तिष्क को सम्प्रेषण चाहिए मस्तिष्क से, मस्तिष्क विहीन वनस्पतियों से एवं अनेकों अदृश्य पराचेतन एवं सूक्ष्म शक्तियों से। मस्तिष्क संगठन है यह संगठित करता है सभी शक्तियों को एक साथ अत्यधिक परिष्कृत रूप में। संगठन के अंदर संगठन और फिर संगठन----- यही अनंत संरचना है मस्तिष्क की। न जाने कितने संगठनों का महासंगठन है हमारा मस्तिष्क। अनंतकाल से हम मस्तिष्क को समझने की कोशिश कर रहे हैं जितना समझते हैं कम ही लगता है। न जाने कब कौन सा मस्तिष्क कौन सी विचित्र क्रिया सम्पन्न कर दे। द्वितीय विश्व युद्ध के मूल में एकमात्र हिटलर का विचित्र मस्तिष्क ही केन्द्र के रूप में उभरा है। विचित्र इसलिए क्योंकि वह मस्तिष्क विशेष है। एक तरफ उसका मस्तिष्क यहूदी स्त्री से प्रेम का सम्प्रेषण कर रहा है तो दूसरी तरफ यही मस्तिष्क समूचे यहूदी समुदाय के विनाश को भी निर्देशित कर रहा है। हिटलर तंत्र विद्या में दक्ष था उसके साथ उस जमाने का मशहूर तांत्रिक हिमलर 24 घण्टे रहता था। ज्योतिषियों का पूरा एक समूह उसे मंत्रणा प्रदान करता था। अनेकों वैज्ञानिक उसके निर्देशानुसार क्रियाशील थे। हिटलर भी आर्य था। द्वितीय विश्व युद्ध तो आर्यों और अनार्यों की लड़ाई थी। हिटलर भी आर्य नस्ल में ही उत्पन्न हुआ है। प्रत्येक हमले से पहले जर्मनी की सेना पूर्ण रूप से तंत्र शास्त्र का सहारा लेती थी। एक-एक पल की ब्रह्माण्डीय गणना ज्योतिषी तय करते थे। एक-से-एक यज्ञ एवं अनुष्ठान सम्पन्न किए जाते थे। कहने का तात्पर्य है कि तंत्र ज्योतिष, अध्यात्म, साधना के अभाव में किसी भी विराट परिवर्तन की अपेक्षा रखना बेकार है क्योंकि महापरिवर्तन में अनिश्चितता होती है। अनिश्चितता अद्वैत का द्योतक है। एक सफल और एक निष्फल मस्तिष्क

में यही फर्क है कि सफल मस्तिष्क स्वेच्छा और सबलता से अद्वैत की चुनौती को स्वीकार करता है। यही है वीरता की प्रतीक आर्य मस्तिष्क की निशानी। बुद्ध अनिश्चित थे फिर भी वन की तरफ गमन किया बुद्धत्व प्राप्ति हेतु, सत्य को समझने हेतु। विवेकानंद की जेब में फूटी कौड़ी नहीं थी फिर भी अमेरिका में होने वाली धर्म सभा के लिए प्रस्थान किया। लक्ष्य ने इनके कदम चूमे। दूसरी तरफ टमाटर के समान सड़े और पिलपिले मस्तिष्क हैं जो पशु के समान बस हरे-हरे चारागाह को पहचानते हैं। अद्वैत से भागते हैं। ऐसे मस्तिष्क बस लोथड़े बनकर रह जाते हैं। घोड़े की आँख पर हरा चश्मा बाँध दो वह भूसे को भी हरी घास समझकर खाने लगेगा। इन लोगों के लिए गायत्री छंद नहीं है। जो मस्तिष्क सम्प्रेषण नहीं कर सकता वह अर्जुन के समान सर्वश्रेष्ठ शिष्य नहीं बन सकता। अर्जुन ने आँख में आँख डालकर प्रश्न किए, अपने मस्तिष्क के अंदर कहीं गहरे में उठने वाले प्रश्नों और शंकाओं को पूरी तन्मयता के साथ महामानव स्वरूप में उपस्थित परम ब्रह्म रूपी मस्तिष्क के कारक प्रभु श्री कृष्ण के सामने एक-एक करके प्रस्तुत किया। आप भी अपने मस्तिष्क के प्रत्येक तल पर उठने वाले प्रश्नों और जिज्ञासाओं को अपने गुरु के सामने रखो। यही विधान है, मस्तिष्क को पाप मुक्त करने का, भय मुक्त करने का, उसे उर्ध्वगामी बनाने का। सम्प्रेषण जरूरी है, दीक्षा जरूरी है, दिव्य चक्षुओं की प्राप्ति भी जरूरी है। त्रिनेत्र साधना के साथ-साथ अनंत नेत्र साधना भी करनी चाहिए। इसमें कुछ भी गलत नहीं है। सभी के मस्तिष्क में असंख्य नेत्र लगे हुए हैं। आप अदृश्य आँखों से भी देख सकते हैं। मस्तिष्क के पास अदृश्य हाथ भी हैं। मस्तिष्क के पास अदृश्य मुँह भी हैं, मस्तिष्क एक साथ कई प्राणों को अपने अंदर स्थापित कर सकता है। मस्तिष्क अपने वजन को दस गुना बढ़ा और घटा भी सकता है। यह सब गायत्री क्रिया के अंतर्गत आता है। मस्तिष्क के गायत्री मय होने पर एक से एक परालौकिक कार्य सम्पन्न होने लगते हैं। विश्वामित्र ब्रह्मऋषि तभी बने जब उन्होंने गायत्री को अनुभूत कर लिया उससे पहले तो वे राजऋषि ही थे। ऋषियों में भी

विभिन्न श्रेणियाँ हैं। राजऋषि की सक्रियता सिर्फ भूमि पर है परन्तु जैसे ही राजऋषि से ऊपर उठकर ब्रह्मऋषि की श्रेणी आती है मस्तिष्क एक झटके से पूर्ण परिवर्तित हो जाता है। उसकी शक्ति ब्रह्माण्डीय शक्ति हो जाती है। वह एक ऐसा स्वरूप ग्रहण कर लेता है जो कि इस समस्त ब्रह्माण्ड के प्रत्येक कण को स्वीकार्य होता है। इस प्रकार का मस्तिष्क कामरहित, लोभरहित, मोहरहित एवं श्वास और भोजन रहित होता है। ऐसा मस्तिष्क ब्रह्माण्डीय शरीर धारण करता है। साधारण जैविक शरीर की सीमाएँ हैं विशेषकर वह पृथ्वी का दास होता है एक क्षण के लिए भी पृथ्वी से अलग होने पर उसका नाश हो जाता है परन्तु ब्रह्माण्डीय स्वरूप ग्रहण करने पर इस ब्रह्माण्ड के प्रत्येक ग्रह पर वह विचर सकता है। इसे कहते हैं सूक्ष्मीकरण। ब्रह्मऋषि ब्रह्मलोक के वासी होते हैं चेतनापुंज होते हैं। राजऋषि एवं अनेकों योगीजन इन्हीं के द्वारा नियंत्रित होते हैं। विश्वामित्र को ब्रह्मऋषि बनने में आधी सदी लग गई। ब्रह्मत्व ही गायत्री शक्ति का कल्प फल है। ब्रह्म को धारण करना ही तो ब्राह्मणत्व है। ब्राह्मणत्व के प्रादुर्भाव से शरीर ब्राह्मण कहलाता है। ब्रह्म पाप रहित है, काम रहित है। निर्लिप्त एवं निर्मल माता गायत्री परम निर्मला हैं। उन्हीं की कोख से निर्मल, निश्चल, नियमित एवं नवीन ब्राह्मणत्व लिए हुए ऋषि पुत्रों का जन्म होता है। इन्हीं पर ब्रह्मऋषियों की असीम कृपा बरसती है। इन्हीं के चरणों में लक्ष्मी नृत्य करती है। इन्हीं से सम्प्रेषित हो जनसमुदाय सात्विकता ग्रहण करता है। ऐसे ही ऋषिपुत्र लीलाधारी होते हैं। इनकी क्रियाओं से सात्विकता ही बरसती है। इतिहास में केवल गायत्री पुत्र ही मंगल मूर्ति के रूप में स्थापित हुए हैं। जो स्वयं पाप विहीन हैं एवं दूसरों को ताप, शाप और पाप विहीन करने की क्षमता रखता हो वही वास्तविक साधक हैं माँ गायत्री के। वही गुरु कहलाता है। गायत्री एवं उसके पुत्रों का एकमात्र लक्ष्य है पाप का नाश। सत्य से सावित्री और सावित्री से गायत्री तक की लम्बी यात्रा ही ब्रह्मऋषि का पथ है। सत्य ही परम ब्रह्म है। इसी पथ का सभी अनुशरण करते हैं चाहे वे आदि गुरु शंकराचार्य जी हों, विश्वामित्र हो या फिर निखिलेश्वरानंद जी महाराज हों।

प्रकृति का दुर्लभ उपहार, आश्चर्यजनक, लक्ष्मीप्रदायक
और प्रबल सिद्धिदायक आक्षातृ गणपति विग्रह स्वरूप

१ वेताक गणपति



मूल्य 301 रुपये मात्र

जिसके माध्यम से आप प्रचुर धन लाभ, लक्ष्मी वशीकरण और इष्ट प्रत्यक्षीकरण जैसी क्रियाओं को सम्पन्न कर पूर्ण रूप से जीवन को निश्चिन्त बना सकते हैं। प्रकृति निर्मित यह अपने आप में एक ऐसा विग्रह है जो गणेश जी के साथ तीक्ष्ण शक्ति तत्व को भी अपने में समेटे हुए है। इसका स्थापन मात्र जीवन को पूर्णता प्रदान करता है और निश्चय ही आप अपने जीवन को पूर्णता देना चाहते ही हैं। आप जरूर पाना चाहेंगे इस विग्रह को जो पूर्ण सिद्धिदायक, चैतन्य और तांत्रोक्त विधि से प्राण प्रतिष्ठित किया हुआ है।

अष्ट लक्ष्मी स्थापन में सहायक, विवाह दोष निवारण
हेतु, पूर्ण वशीकरण क्षमता से युक्त प्रकृति का उपहार

सिद्धिफल

मूल्य 21 रुपये मात्र

इसकी मदद से आप विवाह दोष का निवारण कर अपने वैवाहिक जीवन को सफल बना सकते हैं। लक्ष्मी यंत्र के साथ आठ सिद्धि फलों की स्थापना घर में अष्ट लक्ष्मी को स्थायित्व देती है। किसी भी विग्रह पर पाँच सिद्धि फलों को चढ़ाने से पूर्ण पंचोपचार पूजन हो जाता है। तीन सिद्धि फलों को स्थापित कर किसी भी साधना को प्रारम्भ करने से उस साधना की सफलता में सन्देह नहीं रहता। साधक की असफलता के मूल में उसके तीन दोष व्याप्त रहते हैं, वाक् दोष, चिन्तन दोष और दृष्टि दोष परन्तु सिद्धि फलों का स्थापन उन दोषों को दूर कर देता है। ये फल अपने आप में विलक्षण प्रभाव वाले होते हैं और तांत्रोक्त विधि से इन्हें चैतन्यता प्रदान कर इनके प्रभाव को और प्रबल किया जाता है ताकि यह साधक के मनोरथ को शीघ्रता से पूरा कर सकें।

अध्यात्म की भाषा

सबसे पहले बात करते हैं प्रवचन, पुस्तक, पुराण इत्यादि की यह सब मनुष्य की भाषा के अंतर्गत आते हैं। इनका निर्माण मनुष्य अपने मस्तिष्क से ब्रह्माण्डीय सत्य को अनुभूत करके करता है। अतः ब्रह्माण्डीय सत्य और भाषा के मध्य मनुष्य का मस्तिष्क निश्चित तौर पर आ जाता है। मनुष्य का मस्तिष्क पाइप लाइन तो है नहीं जो कि कम से कम काफी कुछ मात्रा में ज्यों का त्यों स्वच्छ पानी हमारे घर भी पहुँचा देती है। पाइप लाइन में भी कचरा आ सकता है टूट-फूट हो सकती है, जंग लग सकता है एवं बहुत कुछ घट बढ़ सकता है। दबाव के कारण पानी का प्रवाह बढ़ भी सकता है और घट भी सकता है। कभी पाइप लाइन फट भी सकती है। पाइप लाइन की भी अपनी एक उम्र है फिर मानव मस्तिष्क की क्या बात करना? वह तो आज कल अल्प समय में ही प्रदूषित एवं बूढ़ा हो जाता है। नाना प्रकार से विभिन्न हिस्सों में बंट जाता है। आत्मानुशासन लिए हुए मानव मस्तिष्क तो अब दुर्लभ हो गये हैं। चारों तरफ चालाक, कामी, संकुचित एवं लिप्त मस्तिष्कों की भरमार दिखाई दे रही है। ऐसी स्थिति में ब्रह्माण्ड से ग्रहण की गई अनुभूति जब पुस्तकों, प्रवचनों इत्यादि के रूप में प्रकट होती है तो वह अपवित्रता एवं संकुचितता से युक्त होती है। यह हुई एक स्थिति। इसके बाद जैसे-जैसे कालानुसार यह अनुभूति अन्य मस्तिष्कों से गुजरती हुई आप तक पहुँचती है तो इसका स्वरूप इतना बिगड़ जाता है कि ग्रहण करने योग्य ही नहीं रहती। मैं एक उदाहरण देता हूँ मुझे पत्रिका लिखने में तीन दिन लगते हैं। बोलने में तीन दिन लगते हैं परन्तु लिखते समय अनेकों त्रुटियाँ होने की पूरी सम्भावना होती है। यह त्रुटियाँ कम्प्यूटर पर पहुँचते-पहुँचते और बढ़ जाती है। उसके बाद प्रूफ रीडिंग शुरू होती है, पत्रिका बोलने में तीन दिन लगते हैं और प्रूफ रीडिंग में पंद्रह दिन। गेहूँ बीनने से भी ज्यादा कठिन काम है प्रूफ रीडिंग। चार बार सम्पन्न की जाती है प्रूफ रीडिंग। इसमें किसी का दोष नहीं है। मानव मस्तिष्क अनंत प्रकार के दबावों में कार्य करता है। छपते-छपते भी गलतियाँ होने की सम्भावना रहती है। कभी-

कभी स्वयं कुछ कहना चाहता हूँ पर शब्दों का चयन भी ठीक से नहीं हो पाता। अध्यात्म को शब्दों में व्यक्त करना मुश्किल कार्य है। अनेकों पक्ष छूट जाते हैं। शब्द पूर्ण नहीं होते। अतः अध्यात्म को शब्दों के माध्यम से ग्रहण तो करना चाहिए परन्तु पूर्णता से आत्मसात करने के लिए और भी कुछ करना होता है अन्यथा अध्यात्म सिर्फ विचारों और बुद्धि तक सीमित होकर रह जायेगा। ज्ञान जरूरी है परन्तु ज्ञान प्राप्ति के लिए शब्द ही काफी नहीं है, पत्रिका ही काफी नहीं है। अध्यात्म के आगे की स्थिति में शब्दों को खामोश होना पड़ेगा। पत्रिका को उठाकर फेंक देना पड़ेगा। एक बार आँखों में आँखें डालकर आँखों की भाषा से पढ़ना पड़ेगा। भाव जगत में प्रविष्ट होना पड़ेगा। स्वयं ब्रह्माण्ड से ग्रहण करने की क्रिया भी सीखनी होगी। हो सकता है कि पत्रिका लिखने वाला या प्रवचन देने वाला किसी भाव विशेष या आवृत्ति विशेष में गतिमान हो। वह किसी सत्य का अनुसंधान कर रहा हो परन्तु आप उससे सर्वथा अपरिचित हो या उससे भी ऊपर उठ गये हों। कृष्ण के मुख से गीता उच्चारित हुई। अर्जुन ने उसे 5000 वर्ष पूर्व सुना। इन पाँच हजार वर्षों में आप तक गीता पहुँचते-पहुँचते लगभग सौ पीढ़ियों के मस्तिष्कों से सम्प्रेषित हो चुकी हैं। इन सौ पीढ़ियों ने न जाने कितने शब्दों को जोड़ दिया होगा, न जाने कितने महावाक्यों को तोड़ मरोड़ दिया होगा इसकी पूरी-पूरी सम्भावना है। अतः आप तक पहुँची गीता को अगर आप शब्दों के माध्यम से समझते तो मैं समझता हूँ कि आप आधा-अधूरा ही प्राप्त करेंगे। अब सवाल उठता है कि क्या करें? इसके लिए मस्तिष्क को अर्क ग्रहण करने के योग्य बनाना होगा। मस्तिष्क के दरवाजों को पूरी तरह खोलकर रखना होगा। खुले दरवाजों का अपना महत्व है। उनमें से हवा आती जाती रहती है फिर भी कमरे के अंदर हवा उतनी ही मौजूद रहती है जितनी कि रहनी चाहिए और वह भी पूर्ण रूप से स्वच्छ एवं निर्मल। यह स्वस्थ एवं श्रेष्ठ मस्तिष्क की पहचान है। अतः ग्रंथों, पुराणों और प्रवचन इत्यादि को ग्रहण करते समय त्वरित निर्णय पर न पहुँचकर दिमाग को खुला रखें।

मस्तिष्क स्वयं ही अर्क को ग्रहण कर लेगा। आप गुलाब के फूल को देखते हैं उसमें खुशबू है, पंखुड़ियों, रंग, आकृति एवं स्पर्श के साथ परन्तु जैसे ही गुलाब के पुष्प का तेल निकाला जाता है पंखुड़ियाँ गायब हो जाती हैं। पुष्प की आकृति और मौजूदगी भी गायब हो जाती है। बचता है तो सिर्फ खुशबूदार अर्क। आध्यात्मिक असभ्यता साधकों की सबसे बड़ी कमी है। इसके लिए गुरु ही सबसे ज्यादा जिम्मेदार हैं। एक बालक जन्म लेता है उसे बोलना भी नहीं आता। शब्द उसके लिए मूल्यहीन होते हैं। भाषा अर्थहीन होती है। उसका मस्तिष्क मात्र भाव के द्वारा ही अपने को व्यक्त करता है एवं दूसरों को भी भावानुसार ही समझता है। जो साधक आध्यात्मिक रूप से असभ्य होते हैं वे सड़ी-गली पत्रिकाओं के नियमों में उलझकर रह जाते हैं। उनका अध्यात्म केवल शुल्क, न्यौछावर, माला और महिमा मण्डन तक ही सीमित रह जाता है। मैं विगत 12 वर्षों से ऐसे ही असभ्य और मूर्ख साधकों को भटकते देख रहा हूँ। इनके मस्तिष्क इतने कमजोर हो चुके हैं कि यह आँखों के सामने घटित होता हुआ सत्य भी पहचानने से इंकार करते हैं। इनके सामने इनकी जेबें कट जाती हैं और यह देखते रहते हैं। यह सब दुष्परिणाम अध्यात्म को चिकित्सा बना देने के कारण हुआ है। तुरंत एक गोली खाओ और सर दर्द गायब इस सिद्धांत पर अध्यात्म नहीं चलेगा। ऐसे सिद्धांत वाले गण्डे ताबीज बांधकर घूमते हैं। मुझे एक महिला मिली उसने कहा कि मैं हनुमान जी के मंदिर में गई और मूर्ति के सामने खड़े होकर उन्हें धौंस देकर बोली तुम मेरे बेटे को ठीक कर दो तभी मैं तुम्हें मानूँगी। खैर बेटा ठीक हो गया किसी प्रकार से परन्तु यह निश्चित है कि हनुमंत कृपा उस पर कभी नहीं बनेगी। कोई भी देव शक्ति किसी भी निम्नगामी मनुष्य की धौंस से नहीं डरती उसे प्रमाणीकरण की भी जरूरत नहीं है। जिस दिन हनुमंत जैसी शक्ति मनुष्यों के अधीन हो जायेगी, मनुष्य की दासी बन जायेगी, उसके इशारे पर नाचेगी उस दिन हनुमान को कोई नहीं पूजेगा। लोग आध्यात्मिक रूप से इतने असभ्य और गंवार हैं कि उनका वर्णन नहीं किया जा सकता। एक बात स्पष्ट रूप से समझ ली जाय कि प्रभु श्रीकृष्ण ने अर्जुन का रथ प्रेमवश खींचा है और रथ खींचने से पहले अर्जुन ने उनके चरण पकड़कर अश्रु बहाये हैं। प्रभु की परम सत्ता को स्वीकार किया है। श्रीकृष्ण सारथी भी बने हैं तो भी अर्जुन ने उनकी शिष्यता स्वीकार

की। वह आज्ञाकारी बना है श्रीकृष्ण का। सम्पूर्ण महाभारत के युद्ध में उसने एक आज्ञाकारी शिष्य की भांति, एक सभ्य और एक सुसंस्कृत अध्यात्म पथ के जिज्ञासु की भांति निर्विकार रूप से श्रीकृष्ण की प्रत्येक आज्ञा मानी। रथ पर सवार होने से पहले श्रीकृष्ण ने अर्जुन से अनेकों अनुष्ठान करवाये हैं। खाण्डव वन का दहन करवाया है, घोर तपस्या करवाई है, अर्जुन के दम्भ और अहंकार का मान मर्दन करवाया है। उसे यह भी दिखा दिया है कि वह स्वयं की पत्नी का चीर हरण रोकने में भी सक्षम नहीं है। वहाँ पर भी श्रीकृष्ण ने हाथ लगाया है। श्रीकृष्ण न होते तो लाक्षागृह में अर्जुन जल मरा होता। कर्ण के तक्षक अस्त्र द्वारा सिर कट गया होता।

भाषा क्या है? भाषा का तात्पर्य केवल मनुष्यों के मुख से निकला स्पंदन ही नहीं है अगर आप भाषा की समग्रता में जायेंगे तो फिर इस ब्रह्माण्ड की प्रत्येक संरचना चाहे वह जड़ हो, चेतन हो या फिर पिण्ड स्वरूप हो प्रत्येक के अंदर भाषा का पूर्ण परिष्कृत स्वरूप विकसित पायेंगे। प्रत्येक तत्व में गुरुत्व है, स्पंदन है, प्रजनन है एवं सम्प्रेषण की अद्भुत क्षमता है। यह एक सार्वभौमिक एवं ब्रह्माण्डीय व्यवस्था के अंतर्गत आता है। तारे भी बात करते हैं उनकी अपनी एक भाषा है। वे भी सम्प्रेषण करते हैं प्रकाश के माध्यम से, तरंगों के माध्यम से एवं सूक्ष्म परा ध्वनि के माध्यम से। यही तो ज्योतिष का आधार है। प्रत्येक सम्प्रेषण का मनुष्य, पृथ्वी एवं वातावरण पर प्रभाव निश्चित पड़ता है। ज्योतिष गणना एवं लक्षण विज्ञान में नक्षत्रों की भाषा ही ज्योतिषाचार्य एवं अन्य साधक सूक्ष्मता के साथ ग्रहण करते हैं। सारा ब्रह्माण्ड मंत्रमय है। केवल मनुष्य मंत्रों के अंतर्गत नहीं आता यही वेदान्त-पठन, मंत्रोच्चारण एवं अनुष्ठानों, हवन यज्ञ इत्यादि सम्पन्न करने का मूलभूत कारण है। 19 वीं सदी के दशक में कुछ अधिकचरे एवं तथाकथित पढ़े लिखे लोगों ने मनुष्य की एक दो पीढ़ी को पशु रूप में ढालने की भरसक कोशिश की है। अपने निकृष्ट विचारों से उन्होंने विशेषकर भारतवर्ष की एक दो पीढ़ियों को मात्र पशु रूपी मनुष्य बनाकर रख दिया है परन्तु इसके विपरीत पाश्चात्य मुल्कों में 24 घण्टे ऋषितुल्य वैज्ञानिकों ने ब्रह्माण्ड की एक-एक नक्षत्रिकाओं को निहारा है। अनेकों अत्याधुनिक राडारों, दूरध्वनि संयंत्रों एवं अन्य सूक्ष्म परा तरंगों और प्रकाश ग्रहण करने वाले विशेष उपकरणों की सहायता से ब्रह्माण्डीय भाषा को जानने की कोशिश की

है। ब्रह्माण्ड के एक से एक गूढ़ रहस्यों को पकड़ने में वे सफल हो जाते हैं ऋषि क्या है? ज्ञानी कौन है? परम बुद्धि शाली कौन है? प्रज्ञा पुरुष किसे कहते हैं? इस संसार में अधिकांशतः ऐसे मूढ़ मस्तिष्क हैं जिनकी दृष्टि केवल रोटी, पानी और स्त्री तक ही सीमित होती है परन्तु इसी समाज में ऐसे भी विलक्षण मनुष्य होते हैं जो कि ब्रह्माण्ड के गूढ़ रहस्यों को सूक्ष्मता के साथ ग्रहण करने में सक्षम होते हैं। जो व्यक्ति जितना ज्यादा प्रकृति एवं ब्रह्माण्ड के रहस्यों को समझता जायेगा वह ऋषि तुल्य बनता जायेगा। लोग कहते हैं हम आपके गुरु के साथ पढ़े हैं, आपके गुरु के शहर में रहते हैं। उन्हें जोधपुर में देखते रहे हैं, हम उनको बचपन से जानते हैं, उनसे सम्मेलन में मिले हैं। इन सब हास्यास्पद बातों से वे अपने मन को संतुष्ट करते रहते हैं। अपने तथाकथित अहम को बरकरार रखते हुए नकली दम्भ में जीने की कोशिश करते हैं परन्तु वे इस सत्य को स्वीकार नहीं करते हैं कि कृष्ण भी माता के गर्भ से ही उत्पन्न हुए थे। उन्होंने भी ग्वाल बालों के साथ पशु चराये हैं, गुरुकुल में लकड़ी भी काटी है। इन सब सामान्य कर्मों को सम्पन्न करते हुए भी महापुरुष एवं अवतारी शक्तियाँ प्रतिक्षण ब्रह्माण्डीय सम्पर्क में बनी रहती हैं। ब्रह्माण्डीय भाषा में पारंगतता कृष्ण की चौंसठ कलाओं में से एक महत्वपूर्ण अंग है। वे त्रिकालदर्शी तो क्या अनन्तदर्शी हैं। वे समझ गये कि अब ब्रज में रहने का समय समाप्त हुआ तुरंत ब्रज को छोड़ा एवं मथुरा की तरफ प्रस्थान किया। मथुरा में उन्होंने समय और काल की भाषा समझते हुए कंस का वध किया। एक समय के पश्चात् पुनः समय की भाषा समझते हुए द्वारका का निर्माण किया। यही है काल ज्ञान। काल की भाषा को समझना। काल से सम्बन्ध स्थापित करना। काल के अनुसार कर्मों को सम्पन्न करना। सफल एवं ऋषितुल्य व्यक्तियों की यही पहचान है। प्रज्ञापुरुष तो ब्रह्माण्डीय भाषा में इतने दक्ष होते हैं कि उन्हें अपनी मृत्यु के सही समय और क्षण का भी पता होता है। मेरे गुरु ने भी 3 जुलाई को जब सूर्य उत्तरायण में स्थित था एवं ब्रह्म मुहूर्त में ठीक उसी समय शरीर को त्यागा जिस क्षण शरीर त्यागने से आत्मा सीधे सिद्धाश्रम को ही गमन करती है। इसे कहते हैं मुहूर्त ज्ञान, मुहूर्त विद्या। यही प्रज्ञा है। यह भी सत्य है कि हमें भोजन की इच्छा हो रही है और यह भी सत्य है कि ज्यादा भोजन हम नहीं कर सकते। मूर्ख व्यक्ति या तो ज्यादा भोजन कर

लेगा या फिर भोजन नहीं करेगा। वह असंतुलित होता है। वह एक धारा से ज्यादा में अपने मस्तिष्क को क्रियाशील नहीं कर सकता परन्तु प्रज्ञा इन्द्रियों से ऊपर का विषय है। प्रज्ञावान भोजन भी करेगा तो पेट के सामर्थ्य अनुसार ही करेगा। इससे ऊपर उठकर उसमें इतनी शक्ति होती है कि वह जरूरत पड़ने पर पेट को भी आज्ञानुसार क्रियाशील कर देगा। दोनों धाराओं को संतुष्ट करना एवं धाराओं से ऊपर उठकर धारा की भी परवाह न करना व्यक्ति को मनुष्य से ऋषि बनाती है। यही गायत्री रहस्य है। गायत्री मंत्र में 24 तत्त्वों की एक दिव्य संतुलनात्मक संरचना है। 24 दैव शक्तियाँ गायत्री मंत्र में गुथी हुई हैं। गायत्री शक्ति इन 24 देव शक्तियों को संतुलित भी करती है एवं इनसे ऊपर उठकर इन्हें नियंत्रित भी करती है। वह आदि मातृ स्वरूपा है। जीवन में सफल होने के लिए 80 प्रतिशत कर्म का क्षेत्र है। यह व्यक्ति विशेष के हाथ में होता है। 15 प्रतिशत भाग्य का क्षेत्र है। यह उसे पूर्व जन्मकृत कर्मों के अनुसार प्राप्त होता है। इसमें गुरु का दखल अवश्यम्भावी है। वह हाथों की लकीरों की चित्रकारी करने में सक्षम है। इसके अलावा 5 प्रतिशत कुछ और भी है। यह रहस्यात्मक दैव शक्तियों का खेल है। इसके लिए दीक्षाये, अनुष्ठान, गुरुकृपा, गुरु सानिध्य इत्यादि अत्यधिक आवश्यक है। यह साधना पक्ष है। जीवन बस इसी त्रिगुणात्मक व्यवस्था का संतुलन है। जिसमें यह व्यवस्था श्रेष्ठ होगी, सक्रिय होगी, चैतन्य होगी वही महापुरुष बनेगा, वही श्रेष्ठ योगीजन बनेगा, वही सफलता प्राप्त करेगा। पूर्णता उसे ही प्राप्त होगी। यही गायत्री का संदेश है। मैंने अपने जीवन में कर्मवादियों के सिद्धांत भी देखे हैं। अगर कर्म से ही सब कुछ हो जाये तो फिर मजदूर सबसे वैभवशाली होना चाहिए इसके अलावा घोर भाग्यवादी भी देखे हैं जो कि लाटरी न लगने पर आत्महत्या कर लेते हैं। तीसरे साधनात्मक लोगों को भी देखा है। साधनात्मक लोगों में अधिकांशतः सबसे ज्यादा असंतुष्ट, भ्रमित एवं निकम्मे होते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि ऊपर वर्णित त्रिगुणात्मक संतुलन के बिना जीवन कुछ भी नहीं है अगर आधा अधूरा जीवन जीना है तो फिर एकांगी मार्ग अपना लो। पाश्चात्य मुल्कों को सशरीर अंतरिक्ष में भ्रमण करना था, अन्य ग्रहों पर यान भेजने थे, अन्य ग्रहों पर स्थापित होने की उनमें तीव्र लालसा है इसीलिए उन्होंने दूरदृष्टि विकसित की। प्रतिक्षण ब्रह्माण्ड की नब्ज परखी।

उसी अनुसार अपने यंत्रों का निर्माण किया। आप देखिए हर दूसरे दिन उनकी ब्रह्माण्ड के बारे में विचारधारा बदल जाती है। सीधा सा कारण है वे प्रतिक्षण ब्रह्माण्ड में झांकते रहते हैं। हर क्षण अपने यंत्रों की मदद से सुदूर ग्रहों पर जीवन के लक्षण खोजते रहते हैं और खोज भी लिया है। वे बहुत ही चालाक और बुद्धिमान लोग हैं। आपको कुछ भी नहीं बतायेंगे। उनके सम्पर्क तो आप से 20 साल पहले ही ब्रह्माण्ड में रहने वाले अनेक जीवों से हो चुके हैं। पूरा का पूरा एक विभाग अमेरिका में क्रियाशील है जो कि अन्य ब्रह्माण्दीय जीवों के निरंतर सम्पर्क में रहता है। दूरदृष्टि एवं परा दृष्टि अत्यधिक आवश्यक है। हमारे ऋषि-मुनियों की यही देन है। वे लक्षण शास्त्र में अत्यंत निपुण थे। व्यक्ति को देखकर उसके सात जन्म बता देते हैं। प्रकृति में हस्तक्षेप एवं अनुकूलता गुरु अध्यात्म अर्थात् गायत्री की भाषा के द्वारा ही करते हैं। स्थान परिवर्तन, नाम परिवर्तन, सम्बन्ध परिवर्तन इत्यादि इसी ज्ञान के अंतर्गत आता है। जैसे ही अध्यात्म की उच्च श्रेणी में व्यक्ति पहुँचता है गुरु उसका नाम तुरंत परिवर्तित कर देता है। इस प्रकार नवीन जीवन की शुरुआत हो जाती है, कभी-कभी तो जीवित व्यक्ति के अनेकों गूढ़ क्रिया कर्म सम्पन्न करने पड़ते हैं। जिससे कि पितृ दोषों का निवारण हो सके। नकारात्मक शक्तियों का केन्द्र बिन्दु बने व्यक्ति को स्थान परिवर्तन करा के पुनः स्थापित किया जाता है। जगह, भवन इत्यादि अनेकों बार विपरीत प्रतिफल स्थिति लिए होते हैं। प्रत्येक जगह पर विशेष चुम्बकीय बल, नक्षत्र बल इत्यादि क्रियाशील होते हैं। प्रकाश की भी स्थिति भिन्न होती है जिसके कारण व्यक्ति की सर्वोन्नति में नाना प्रकार की बाधाएँ पड़ती हैं। व्यक्ति रोग ग्रसित हो जाता है, जीवन कष्टप्रद एवं दुष्कर हो जाता है। ऐसी स्थिति में स्थान परिवर्तन अवश्यम्भावी है। अतः अपने मस्तिष्क को केवल मनुष्य की भाषाओं तक सीमित नहीं रखिए। कुण्डलिनी जागरण की यही पहचान है। व्यक्ति झूठ बोलता है एवं इतना ज्यादा नकाब और बनावट लिए हुए होता है कि आसानी से उसका वास्तविक स्वरूप एवं वास्तविक लक्ष्य स्थूल दृष्टि से समझ पाना अत्यंत ही दुष्कर होता है। कुछ व्यक्ति तो इतने धूर्त और मक्कार होते हैं कि पुलिस भी उनसे सच नहीं उगलवा सकती। यही तो सबसे बड़ी समस्या है अंदर कुछ और बाहर। कुछ ऐसे लाखों शिष्य मैंने देखे हैं जो कि सामने आपके चरणों पर लोटेंगे और

बाहर निकलते ही आपको अपशब्द बोलने में भी नहीं चूकेंगे। कुख्यात व्यक्तियों को समझने के लिए उनके आभामण्डल को देखना पड़ेगा। आभामण्डल कभी भी झूठ नहीं बोलता। उनके पास से आने वाली गंध को सूंघना पड़ेगा, उसकी संरचना समझनी पड़ेगी कि व्यक्ति कितना विषैला है। आँखें बंद करके एकाग्रता से, चुपके से, निर्विकार होकर उसके शब्दों को सुनना पड़ेगा जिससे कि समझ में आ सके कि व्यक्ति कहाँ से बोल रहा है। उसकी वाणी हृदय से आ रही है या फिर उसके मस्तिष्क में स्थित किसी षडयंत्रकारी केन्द्र से स्त्रावित हो रही हैं। यही भाषा विज्ञान है। यही गायत्री विज्ञान है। सत्य को समझना ही ब्रह्म विद्या है। जो गायत्री का साधक होगा वह दो मिनट में सारे नकाब, सारे पर्दे और सारी बनावट भेदते हुए सामने वाले की नग्न एवं वास्तविक तस्वीर देख लेगा नहीं तो फिर निश्चित ही षडयंत्रों का शिकार होगा। जिसमें यह ताकत होगी वह शिकारी का भी शिकार करेगा। खुद शिकार करेगा, खुद शिकार नहीं बनेगा। शिकारी को स्वयं के जाल में ही उलझा देगा। सीधी सी बात है इस पृथ्वी पर यह दिक्कत नहीं है कि आपका मस्तिष्क शक्तिशाली है या नहीं। आपको आपके समय में क्रियाशील मस्तिष्कों को समझना पड़ेगा। उलट गायत्री भी होती है। तंत्र शास्त्र में उलट गायत्री भी होती है। यह कला मारण, मोहन, उच्चाटन एवं कीलन में काम आती है। इसका विस्तृत वर्णन इसी पत्रिका में करूंगा। यह अत्यधिक ही गूढ़ विद्या है। मवाला यह है कि दुष्ट व्यक्ति भी अत्यधिक साधनात्मक होते हैं। रावण से लेकर दुर्योधन तक सबके सब तीक्ष्ण साधक थे। इनकी साधनाएँ दुर्लभ एवं विकट थीं। ये सब अनुसंधानकर्ता, वैज्ञानिक, तत्त्वज्ञ, काल ज्ञानी इत्यादि थे। हिटलर अपने साथ तांत्रिकों एवं ज्योतिषियों की फौज फटाका लेकर चलता था। उसके सबसे विश्वसनीय तांत्रिक साथी का नाम था हिमलर। यह तथ्य द्वितीय विश्व युद्ध के इतिहास का एक प्रामाणिक अंश है। प्रत्येक जर्मन आक्रमण से पहले समय, काल, मुहूर्त इत्यादि का विशेष ध्यान रखा जाता था। जैसे ही व्यक्ति के पास मानसिक, वैचारिक एवं मस्तिष्कीय क्षमता का विकास होता है वह दूसरे मनुष्यों पर अधिकार जमाने की चेष्टा करता है बस यहीं पर कर्म के सिद्धांत पर चलने वाले मार खा जाते हैं। जो ज्यादा ध्यान करेगा, अनुष्ठान करेगा, पूजन करेगा,

तांत्रोक्त क्रियाएँ सम्पन्न करेगा वह उतना ही ज्यादा शक्ति अपने अंदर समेट लेगा। इस प्रकार अनेकों मनुष्य चलते फिरते शक्ति केन्द्र बन जाते हैं। बस इसी कारणवश ये अपने चुम्बकत्व के द्वारा घर परिवार, पड़ोसी, नाते, रिश्तेदार एवं अन्य सम्बन्धित मनुष्यों को परेशानी, अस्थिरता एवं विपरीत परिस्थितियों में डाल देते हैं। मस्तिष्क के खेल निराले हैं। अधिकांशतः व्यक्ति तथाकथित प्रगतिशील विचारधारा के कारण पतन की ओर अग्रसर हो जाते हैं, न तो इनका कोई गुरु होता है, न ही ये कवचित होते हैं बस परेशान होकर ऊपर-ऊपर भागते रहते हैं और अंत में जब पास आते हैं तो बुरी तरह से टूटे-फूटे एवं विक्षिप्त होते हैं। यही है कहानी इस समाज की। अतः आपको भी अपने मस्तिष्क को शक्तिशाली करना होगा। मस्तिष्क में आयी टूटनों को पुनः व्यवस्थित करने के लिए अनुष्ठान कराने होंगे, खुद भी एक व्यवस्थित साधनात्मक जीवन जीना होगा। केवल पचास हजार का शौचालय बना लेने से काम नहीं चलेगा। बीस लाख का मकान बना लेने से काम नहीं चलेगा। जरूरी नहीं है कि बीस हजार के बिस्तर पर सुख की नींद आ जाये। सुन्दर पत्नी के होते हुए भी आप सुखी गृहस्थ हों। आपको अपना पूजन कक्ष भी व्यवस्थित करना होगा, उसे शक्ति केन्द्र में परिवर्तित करना होगा, अपनी सात्विक शक्ति को बढ़ाना होगा। सब पक्षों पर पैसा खर्च आप लोग करते हैं परन्तु सारी कन्जूसी पूजन कक्ष के प्रति करते हैं। वहाँ पर गंगा जल भी उपलब्ध नहीं होता है। 99 प्रतिशत लोग तो पूजा कक्ष बनवाते ही नहीं है। सारे कक्ष घर के बढ़ाते जाते हैं परन्तु पूजा कक्ष को सिकोड़ते जाते हैं। ठीक है फिर भगवान को क्यों दोष देते हो। आजकल प्रथा चली है हाजिरी लगाने की। भारत सरकार के कार्यालयों में सुबह हाजिरी लगाने के बाद कर्मचारी से लेकर अफसरों ने इति श्री करने की परम्परा अपना ली। देखते ही देखते सरकारी उपक्रम बंद होने लगे, नई नियुक्तियाँ बंद हो गयीं और अब सरकार ने खीजकर सब कुछ प्राइवेट हाथों में देने का निर्णय कर लिया। इसे कहते हैं कर्तव्य के प्रति अन्याय। इतनी बड़ी सरकार खीज गई, घबरा गई, तनखाह देने के लिए पैसे भी नहीं बचे। जिस डाल पर बैठे हैं उसे ही काटना शुरू कर दिया लोगों ने। यह काहिलता का प्रतीक है। न्याय तो करना ही चाहिए। गायत्री न्याय की भाषा बोलती हैं। न्याय अपने कर्म के प्रति, अपने देश के प्रति, स्वयं के प्रति। आप

स्वयं के शरीर से अन्याय कीजिए उसकी भाषा समझना बंद कर दीजिए बस थोड़े ही दिनों में रोग ग्रस्त हो जायेंगे। शरीर भी बार-बार मूक भाषा में संदेश देगा। आप उसे अनसुना कर दें तो रोग ग्रस्त तो होंगे। मेरे गुरु ने कहा था कि मृत्यु भी अचानक नहीं आती है। अचानक कुछ भी नहीं होता है। अचानक शब्द जड़ता का प्रतीक है। सोये हुए व्यक्ति का प्रतीक है। गुरु एक नजर में समझ जाता है कि अनिष्ट होने वाला है तुरंत ही महामृत्युंजय अनुष्ठान शुरू कर देता है। भाषा को समझना, गूढ़ संकेतों का विवेचन करना गुरु का प्रमुख कार्य है। हाजिरी की इस प्रथा से ईश्वर भी हाजिरी लगाने लगता है। मंदिर के सामने से निकल जाओ। बाहर से ही हाजिरी लगा लो तो ईश्वर भी हाजिरी लगा देगा। उसे क्या पड़ी है, तुम्हारे जैसे बहुत घूमते हैं, गुरु भी हाजिरी लगा देगा। जैसा शिष्य होगा वैसा ही गुरु उसके साथ व्यवहार करेगा। एक जैन मुनि से मैं मिला। जैन मुनि अत्यंत ही साधनात्मक होते हैं। कठोर तप उनकी जीवन शैली होती है, उन्हें प्रकृति की भाषा का इतना ज्ञान था कि एक जगह उन्होंने लकड़ी मारी तुरंत ही उस गाँव में वहाँ से पानी का स्रोत फूट पड़ा। उनके साथ चल रहे सभी अनुयायियों ने उस स्थान से पानी ग्रहण किया। जिस स्रोत को वर्षों से गाँव वाले नहीं खोज पाये थे उसे मुनि महाराज ने एक क्षण में खोज लिया। आप भी भाषा विद् बने। जंगलों एवं वनों में विचरने वाले साधु संत जंगलों से बात करते हैं। दुर्लभ एवं दिव्य वन औषधियों से सम्प्रेषण करते हैं। कुछ ही क्षण में अमृतकारी औषधियों एवं जड़ी बूटियों के द्वारा कायाकल्प कर लेते हैं। यह उनका ज्ञान है। यह उनकी दृष्टि है। अब गधे के सामने घास डालों या गेंहूँ के पौधे उसे क्या फर्क पड़ता है। वह तो खेत भी घास समझकर चर जायेगा। यही तो विडम्बना है। सारी समस्या की जड़ है। गायत्री शक्ति को कम से कम अपने अंदर गायत्री मंत्र के द्वारा, गायत्री यंत्र के द्वारा, गायत्री यज्ञ के द्वारा, गायत्री दीक्षा के द्वारा आत्मसात करने की कोशिश करें। जीवन का प्रत्येक आयाम सर्वोन्मुखी उन्नति की ओर अग्रसर होगा और पूर्णता प्राप्ति का मार्ग आपके लिए खुलेगा। यही इस लेख में मेरा मर्म है। गुरु का मर्म गायत्री मय होता है सबका मंगल हो यही आकांक्षा है और कुछ नहीं।

★

गायत्री मंत्र जप विधान

भगवती गायत्री वेद माता हैं। बृह्माण्ड के सभी मंत्रों में गायत्री मंत्र समाहित है। यह जीवन को पूर्णता देने वाला मंत्र है यद्यपि इस महामंत्र की महिमा तथा इसके गूढ़ रहस्यों का जिक्र पत्रिका में विस्तृत रूप से किया जा चुका है किन्तु साधक इस महामंत्र से पूर्णतः लाभान्वित हो जीवन में सुख, समृद्धि,

यश, वैभव व पूर्णता प्राप्त करें इस उद्देश्य से गायत्री मंत्र जप करने की शास्त्र सम्मत विधि हम प्रस्तुत कर रहे हैं।

गायत्री मंत्र "ॐ

भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गोदेवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्" का शाब्दिक अर्थ है कि हम सत् चित् आनन्द सृष्टिकर्ता प्रकाशमान परमात्मा के उस प्रसिद्ध वरणीय तेज का ध्यान करते हैं जो परमात्मा हमारी बुद्धि को सत् की ओर प्रेरित करें। साधक को चाहिए कि वह

स्नानादि नित्य क्रियाओं से निवृत्त होकर स्वच्छ वस्त्र धारण कर स्वच्छ आसन पर बैठे तथा पवित्र तुलसी की माला से गायत्री मंत्र का जप तीनों संध्याओं में किया जाता है।

गायत्री-जप का विधान

षडङ्गन्यास- गायत्री मंत्र के जप के पूर्व षडङ्गन्यास करने का विधान है। अतः आगे लिखे एक-एक मंत्र को बोलते हुए चित्र के अनुसार उन-उन अङ्गों का स्पर्श करें-

ॐ हृदयाय नमः (दाहिने हाथ की पाँचों अंगुलियों

से हृदय का स्पर्श करें।) ॐ भूः शिरसे स्वाहा (मस्तक का स्पर्श करें।) ॐ भुवः शिखायै वषट् (शिखा का अंगूठे से स्पर्श करें।) ॐ स्वः कवचाय हुम् (दाहिने हाथ की अंगुलियों से बायें कंधे का और बायें हाथ की अंगुलियों से दायें कंधे का स्पर्श करें।)



ॐ भूर्भुवः स्वः नेत्राभ्यां वौषट् (नेत्रों का स्पर्श करें।) ॐ भूर्भुवः स्वः अस्त्राय फट् (बायें हाथ की हथेली

पर दायें हाथ को सिर से घुमाकर मध्यमा और तर्जनी से ताली बजायें।)

प्रातःकाल ब्रह्मरूपा गायत्री माता का ध्यान-

ॐ बालां विद्यां तु गायत्रीं लोहितां चतुराननाम्।

रक्ताम्बरद्वयोपेतामक्षसूत्रकरां तथा॥

कमण्डलुधरां देवीं हंसवाहनसंस्थिताम्।

ब्रह्माणीं ब्रह्मदैवत्यां ब्रह्मलोकनिवासिनीम्॥

मन्त्रेणावाहयेद्देवीमायान्तीं सूर्यमण्डलात्।

'भगवती गायत्री का मुख्य मंत्र के द्वारा सूर्यमण्डल से आते हुए इस प्रकार ध्यान करना चाहिये कि उनकी किशोरावस्था है और वे ज्ञानस्वरूपिणी हैं। वे रक्तवर्णा हैं। उनके हाथ में रुद्राक्ष की माला है। हाथ में कमण्डल धारण

किये वे हंसपर विराजमान हैं। वे सरस्वती-स्वरूपा हैं, ब्रह्मलोक में निवास करती हैं और ब्रह्माजी उनके पतिदेवता हैं।'

गायत्री का आवाहन- इसके बाद गायत्री माता के आवाहन के लिये निम्नलिखित विनियोग करें-
तेजोऽसीति धामनामासीत्यस्य च परमेष्ठी प्रजापतिर्ऋषिर्यजुस्त्रिष्टु-
बुष्णिहौ छन्दसी आज्यं देवता गायत्र्यावाहने विनियोगः।

पश्चात् निम्नलिखित मंत्र से गायत्री का आवाहन करें-

ॐ तेजोऽसि
शुक्लमस्यमृतमसि।
धामनामासि प्रियं देवानामना-
धृष्टं देवयजनमसि।

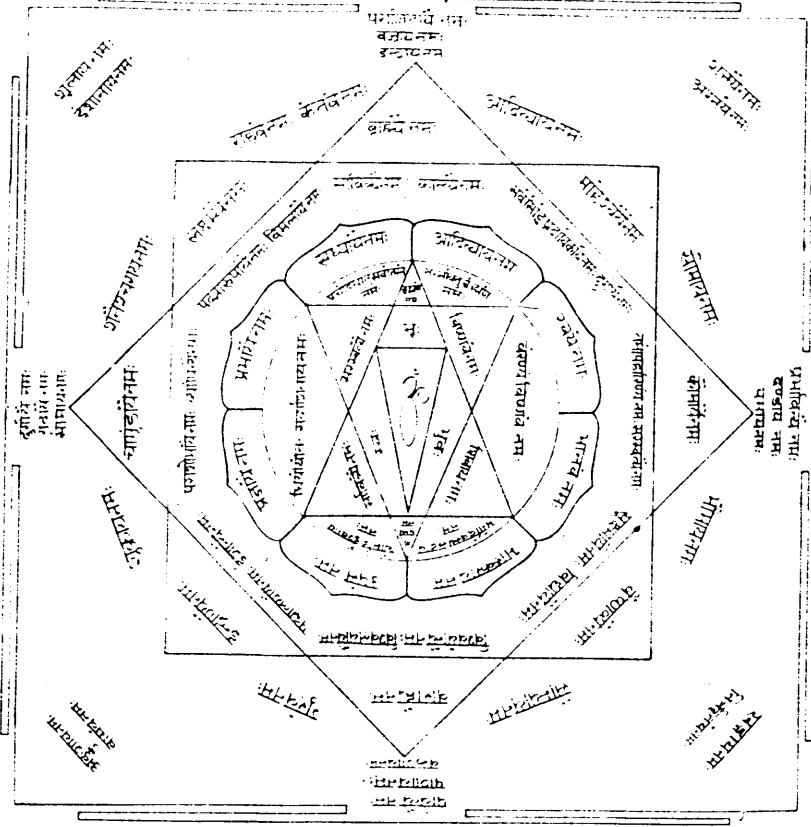
गायत्री देवी का उपस्थान प्रणाम- आवाहन करने पर गायत्री देवी आ गयी हैं, ऐसा मानकर निम्नलिखित विनियोग पढ़कर आगे के मंत्र से उनको प्रणाम करें-
गायत्र्यसीति विवस्वान् ऋषिः
स्वराणमहापङ्क्तिश्छन्दः परमात्मा देवता
गायत्र्युपस्थाने विनियोगः।

ॐ गायत्र्यस्येकपदी द्विपदी त्रिपदी
चतुष्पद्यपदसि। न हि पद्यसे नमस्ते तुरीयाय दर्शताय
पदाय परोरजसेऽसावदो मा प्रापत्।

इसके पश्चात् गायत्री मंत्र की 11 या 21 माला का जप करें-

"ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गोदेवस्य
धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात् "

श्रीगायत्रीयन्त्रम्



सूर्य प्रदक्षिणा

गायत्री मंत्र का जप पूर्ण होने पर भगवान् भास्कर की निम्न मंत्रोच्चार के साथ प्रदक्षिणा करें-

यानि कानि च पापानि जन्मान्तरकृतानि च।
तानि सर्वाणि नश्यन्तु प्रदक्षिणपदे पदे॥

यद्यपि तीनों संध्याओं के समय गायत्री मंत्र का जप पूर्ण वर्णित क्रमानुसार किया जाता है किन्तु कुछ विशिष्ट अनुष्ठानों में गायत्री मंत्र जप के बाद आठ मुद्रायें, गायत्री कवच, तथा गायत्री तर्पण भी किया जाता है।

विनियोग-

'उत्तमे शिखरे' इत्यस्य वामदेव ऋषिरनुष्टुप्छन्दः
गायत्री देवता विसर्जने विनियोगः।

गायत्री के विसर्जन का मंत्र-

ॐ उत्तमे शिखरे देवी भूम्यां पर्वतमूर्धनि।
ब्राह्मणेभ्योऽभ्यनुज्ञाता गच्छ देवि! यथासुखम्॥

एकीकरण

गायत्री मंत्र को आदि गुरु मंत्र माना गया है। सीधी सी बात है गायत्री शक्ति आदि गुरु बल है। इसी गुरु बल से सभी गुरु मंत्रों का अभ्युदय हुआ है। परम तत्व ही आदि गुरु है। अगर गुरु न भी हो और गुरु मंत्र न भी मिला हो तो भी गायत्री मंत्र या गायत्री शक्ति के अनुष्ठान से व्यक्ति विशेष ब्रह्माण्ड में उपस्थित गुरु तत्व से एकीकरण कर सकता है। ध्यान रहे शरीर भी ब्रह्माण्ड का ही हिस्सा है गुरुबल का बिखराव ही अनंत समस्याओं की जड़ है। एकीकृत गुरु बल ही ध्यानस्थ मस्तिष्क को जन्म दे सकता है। ध्यानस्थ मस्तिष्क वह मस्तिष्क है जिसमें कि विभिन्न बल अलग-अलग न भागकर एक व्यवस्थित संरचना के रूप में ज्योतिपुंज का निर्माण करते हैं। जीवन की बिडम्बना यही है कि प्राप्त किया हुआ बल बस यूँ ही बिखर जाता है। पहले बिखराव को समझ लेते हैं फिर एकीकरण को समझना आसान हो जायेगा। बिखराव का तात्पर्य है टूटन, शक्ति की हीनता होना। यह एक नकारात्मक क्रिया है इसमें शक्ति का क्षय होता है। इसे अव्यवस्था कहते हैं। मन किसी कार्य के लिए प्रेरित कर रहा है, आत्मा की भूख कुछ और है परन्तु शरीर कुछ और ही कार्य कर रहा है। इन्द्रियाँ नियंत्रण विहीन हो गई हैं। कुल मिला-जुलाकर ऐसी स्थिति में ही नियंत्रण का केन्द्र क्षीण हो जाता है और लक्ष्य की प्राप्ति के बिना ही सभी तत्व बिखर जाते हैं इसे आप विस्फोट की क्रिया भी कह सकते विस्फोट के पश्चात् अनियंत्रित ऊर्जा का उदय होता है अगर विस्फोट के पश्चात् नियंत्रण न रखा जाय तो ऊर्जा व्यर्थ हो जायेगी परन्तु विस्फोट के पश्चात् अगर ऊर्जा नियंत्रित कर ली जाती है तो फिर विस्फोट उपयोगी सिद्ध होगा, हितकर सिद्ध होगा और इससे सम्प्रेषण क्रिया तीव्र एवं दीर्घजीवी भी होगी अन्यथा विस्फोट घातक ही सिद्ध होगा। नियंत्रण अत्यधिक आवश्यक है। व्यवस्था परिष्कृत होनी ही चाहिए। सब कुछ व्यवस्थित करना ही पड़ेगा सात्विक शक्ति की यही पहचान है। गायत्री शक्ति सात्विक शक्ति है। सात्विक रूप में यह

अत्यधिक क्रियाशील रहती है अगर वायु तामसिक होकर उग्र रूप धारण कर लेती है तो फिर मकान गिर जायेंगे, वृक्ष उखड़ जायेंगे और सिर्फ ताण्डव ही ताण्डव दिखाई देगा। राजसिक स्वरूप में वैभव का उदय होगा। जहाँ पर वायु अत्यधिक ठण्डी होगी वहाँ पर जीवों के ऊपर बालों की संख्या बढ़ ही जायेगी। वजन तो लद ही जायेगा। इन्द्रियाँ सुस्त तो पड़ ही जाती हैं परन्तु अगर वायु मंद-मंद शीतलता लिए बहती है तो फिर जीवन सरल हो जायेगा। सात्विकता में ही अमृत की अधिकता होती है। एकीकरण के लिए सात्विकता की ही जरूरत है। सात्विकता के मार्ग में रुकावट है तामसिक गुण, लिप्तता, पूर्वजन्मकृत दोष, पाप रूपी कर्म इत्यादि। जब मैं देखता हूँ कि साधक के जीवन में अवरोधों की अधिकता दिखाई दे रही है, मानस कलुषित होता दिखाई पड़ रहा है तो फिर उसे अतिशीघ्र ही पारदेश्वर स्थापित करने की सलाह दे दी जाती है। पारा धातु है। भगवान शिव का वीर्य है। इसके ऊपर तो एक विशेषांक निकाला जा सकता है इसकी महिमा ही निराली है। धातु होते हुए भी यह पानी के समान तरल रहता है। किसी और धातु में ऐसी विशेषता नहीं पायी जाती है। जब इसे मंत्रों के द्वारा एवं विशेष जड़ियों के द्वारा शिवलिङ्ग के रूप में ढाला जाता है तब निर्मित हुए शिवलिङ्ग की छटा देखने योग्य होती है। पारदेश्वर का तात्पर्य है कि जीवन की बिखरती हुई ऊर्जा को एकीकृत कर ऊर्ध्वगामी बनाना। इसके स्पर्श और पूजन से ही इतने अनमोल लाभ प्राप्त होते हैं कि वर्णन ही नहीं किया जा सकता। विशेषकर कलयुग में तो यह अमृत कुण्ड है। पारदेश्वर के अभाव में कोई भी व्यक्ति साधक बन ही नहीं सकता। कलयुग में साधक बनने के लिए, सात्विक बनने के लिए ऊर्ध्वगामी जीवन जीने के लिए पारदेश्वर पूजन तो अनिवार्य ही है अन्यथा जीवन की शक्ति विषाद, दुर्गुण, रोग, दरिद्रता इत्यादि में बिखर जायेगी। जो धातुओं को बांध सकता है वो मनुष्य की

बिखरती हुई ऊर्जा को तो क्षण भर में बांध देता है। अत्यंत ही सूक्ष्म रहस्य छिपे हुए हैं पारदेश्वर पूजन में। लक्ष्मी तो चंचल है। एक क्षण भी टिकना नहीं चाहती है। संवेदनशील इतनी है कि ठोक बजाकर ही संस्पर्शित करती है मनुष्य को। मनुष्य उतावला रहता है लक्ष्मी के संस्पर्श के प्रति चाहे वह किसी भी रूप में आये। यश के रूप में आये, धन के रूप में आये, स्त्री के रूप में आये इत्यादि-इत्यादि सारे उद्यमों की जड़ ही लक्ष्मी है फिर भी इससे एकाकार कर पाना अत्यंत ही दुष्कर है। एक बात ध्यान से समझ लीजिए गायत्री आदि मातृ शक्ति है। ब्रह्मा से स्फुरित हुई है। ब्रह्मा ने अपनी सतस्त शक्ति गायत्री को समर्पित कर पुनः सूक्ष्मता धारण कर ली है और गायत्री से ही अन्य देवी रूप में मातृ शक्तियों का प्रादुर्भाव होता रहता है। लक्ष्मी विष्णु की पत्नी हैं, विष्णु की अर्धांगिनी हैं। केवल विष्णु ही उनकी चंचलता को बाँध सकते हैं। क्षीर सागर में वे ही विष्णु के चरण दबाती हैं। आप विष्णु नहीं हैं अतः लक्ष्मी को आप केवल माता स्वरूप में ही स्पर्श कर सकते हैं। पूर्ण शुद्ध हृदय से आह्वान की गई लक्ष्मी शक्ति ही आपका उनके विभिन्न आयामों से एकीकरण करा सकती है अन्यथा एकीकरण नहीं होगा इसीलिए छल-प्रपंच और कुमार्ग से लक्ष्मी की प्राप्ति करने वालों का जीवन रस विहीन हो जाता है। लक्ष्मी का स्वरूप आर्दता लिए हुए है अर्थात् वह रस युक्त है इसलिए पारदेश्वर पूजन के द्वारा जीवन में रस का एकीकरण होता है। कैसी विडम्बना है यही शंकराचार्य जी समझा रहे हैं कि महालक्ष्मी पूजन सृष्टि क्रमानुसार करो अन्यथा जीवन रस विहीन हो जायेगा अन्य मार्ग से प्राप्त की गई लक्ष्मी जीवन को रस विहीन बना देगी। उल्टी क्रिया के उल्टे परिणाम होंगे। रसमय होना ही एकाकार है। रसेश्वरी विद्या समझनी होगी। जब तक तना वृक्ष से जुड़ा रहेगा रस युक्त रहेगा। उसमें पत्ते और फल भी लगेंगे परन्तु वृक्ष से अगर टूट गया तो फिर लकड़ी बन जायेगा। कुछ भी उत्पन्न नहीं होगा। सिर्फ चूल्हे में जलाया जायेगा या फिर भूमि पर पड़ा सड़ता रहेगा। रस की क्रिया यहीं समाप्त नहीं होती। तने में फल लगते हैं। फल अर्थात् रसों से युक्त संरचना। जैसे ही वृक्ष स्वेच्छा से फल का त्याग करता है उसके साथ बीज भी पृथ्वी पर आ गिरता है। बीज अर्थात् पूरे-पूरे वृक्ष का एक रसमयी उत्पादन। बीज में इतनी शक्ति होती है कि वह फिर से

एक नया वृक्ष उत्पन्न कर सकता है क्योंकि उसमें रस है उसका प्रत्येक अंश कूट-कूटकर रस से भरा हुआ होता है। आपने कभी गूदे से तेल निकलते हुए देखा है। तेल निकालने के लिए बीज ही पीसने पड़ते हैं। यह है ईश्वर द्वारा रची गई अद्भुत रसेश्वरी विद्या जिसके द्वारा एकीकरण की व्यवस्था निरंतर चलती रहती है। एकीकरण अर्थात् श्रृंखलाबद्ध संरचना के रूप में शक्ति के हस्तांतरण की क्रिया। अत्यधिक सूक्ष्मता के साथ इस सम्पूर्ण रसेश्वरी कला को समझना होगा। रस का ही रस में मिलन होता है। शक्कर दूध में घुल जातो है वह भी रस से बनती है परन्तु लोहा दूध में नहीं घुलेगा। घुलेगा भी तो तभी जब रस युक्त होगा। वैसे तो रस सभी में होता है किसी में ज्यादा, किसी में कम, रस के अभाव में तो अस्तित्व ही सम्भव नहीं है। लोहे को अगर दूध में घुलना है तो फिर उसे सूक्ष्म होना पड़ेगा, उसे अपना अस्तित्व साकार रूप में समाप्त करना होगा। आवृत्ति या अणु रूप में वह जल में धुलनशील या एकीकृत हो सकता है। जल में भी खनिज होते हैं परन्तु मिल जुलकर रहते हैं। स्वतंत्र अस्तित्व वहाँ पर सम्भव नहीं है। एकीकरण का यही सिद्धांत है। अस्तित्व, अहम, द्वंद की शून्यता अन्यथा एकीकरण सम्भव नहीं है। जल का गुरुबल एकीकृत गुरुबल होगा। निश्चित ही उसमें खनिज तत्वों के गुरुबल का अपना एक विशेष स्थान होगा। हँसकर मानो या रोकर मानो एकीकरण सार्वभौमिक प्रक्रिया है यह तो स्वयं ही होती रहती है इसे कोई नहीं टाल सकता। क्रिया में समय का कोई महत्व नहीं है। चाहे आप 60 वर्ष जियें या 100 वर्ष एक दिन शरीर का समस्त भूमि तत्व मिट्टी में मिल जायेगा, वायु में मिल जायेगी और रक्त, मूत्र इत्यादि के रूप में मौजूद शरीर का 70 प्रतिशत हिस्सा पुनः जल में मिल जायेगा। ऐसा अगर न हो तो आप इस पृथ्वी के अंतिम जीव होंगे। देखिए एकीकरण हो गया। स्वतंत्र अस्तित्व कहाँ सम्भव है। इतनी सी बात लोग नहीं समझ पाते। मृत्यु के पश्चात् सभी गुरु एक हो जाते हैं। वे निराकार हो जाते हैं, पंथ, सम्प्रदाय, धर्म और परिवार से ऊपर उठ जाते हैं। इसे कहते हैं परमेष्ठि गुरु होना। यही पूजन योग्य होते हैं परन्तु परमेष्ठि गुरु के साथ वर्तमान गुरु भी आवश्यक होता है। क्षणिक और तात्कालिक कार्य वर्तमान गुरु ही करेगा वही अनुष्ठान करायेगा वही दीक्षा देगा, वही प्रवचन करेगा। उसके

आह्वान की जरूरत नहीं है। अगर ऐसा न हो तो वर्तमान गुरु की व्यवस्था ही सृष्टि निर्मित न करे। सभी बस निराकार को ही पूजें। निराकार के पास इतनी फुरसत कहाँ है। निराकार गुरु व्यवस्था में सामान्यतः हस्तक्षेप नहीं करते। जब तक शरीर है तब तक निर्विकार भाव से कर्म सम्पन्न करते हैं उसके पश्चात् वे क्यों लिस होने लगे फालतू के प्रपंचों में। एक बार प्रमोशन हो गया तो फिर हवलदार सिपाही का काम नहीं करते। वे न्याय प्रिय होते हैं अपने क्षेत्र में ही रहते हैं। अपनी गरिमानुसार ही कार्य करते हैं। बीज नया वृक्ष उगायेगा। फिर पेड़ से जुड़ने की प्रक्रिया नहीं करेगा। न ही गूदे के लिए रोयेगा। एक पेड़ से पुनः अनंत गूदों वाले फल उत्पन्न हो जायेंगे। सभी अवतारी शक्तियाँ चाहे वह राम हों या कृष्ण एकीकरण की नीति पर ही चलते हैं। आदि गुरु शंकराचार्य जी ने बौद्धों को परास्त किया और उन्होंने ही बुद्ध को विष्णु का अवतार भी घोषित करवाया अन्यथा कहाँ विष्णु और कहाँ बुद्ध। फिर भी एकीकरण तो करना ही पड़ता है यही कारण है कि उस जमाने के बौद्धों ने बहुत कोशिश की थी कि सनातन धर्म को तोड़ें परन्तु शंकराचार्य ने ऐसा एकीकरण किया कि तोड़ने वाले खुद ही भारत भूमि में विलीन हो गये। वे महान प्रज्ञा पुरुष हैं, प्रज्ञा विभूति हैं। आज के जमाने के समान तथाकथित महात्मा नहीं जिन्होंने देश के दो टुकड़े कर दिए। ऐसे तथाकथित महात्मा को एकीकरण की रसेश्वरी क्रिया आती ही नहीं थी अन्यथा वे देश के विभाजन पर मोहर नहीं लगाते। अध्यात्म की अल्पता ही पिछले 100 वर्षों से इस देश के पतन का कारण बन गई है। कहीं न कहीं गायत्री शक्ति को सूक्ष्मता के साथ नहीं समझा गया है। इस देश में अनगिनत संख्या में ऋषि-मुनि, साधु-संत, दर्शन शास्त्री इत्यादि होते रहे हैं और होते रहेंगे। इन सबके मतों में घोर विरोध है फिर भी सबके सब सनातन धर्म में बने हुए हैं। इन सबके मस्तिष्क अत्यंत ही पराशक्तिशाली रहे हैं फिर भी इस देश में टूटन नहीं हुई है। इन सबके पीछे केवल एक मंत्र का अनुष्ठान ही है और वह है गायत्री मंत्र। मस्तिष्क इसी के द्वारा नियंत्रण में रखे जाते हैं। यह मंत्र उस दिव्य एकीकृत करने वाली शक्ति का प्रतिनिधित्व करता है जिससे कि समस्त ब्रह्माण्ड आकाश गंगा, नक्षत्रिकाएँ इत्यादि एक समूह में गुथे हुए रहते हैं। एक का भी अस्तित्व अकेले सम्भव नहीं है।

जो कुछ होगा सबके साथ एक साथ होगा। एकीकरण स्वेच्छा की व्यवस्था है शिव और शक्ति के मिलन से शिवलिङ्ग का निर्माण होता है। यही प्रक्रिया सभी तत्व अपनाकर स्वेच्छा पूर्वक एकीकरण करते हैं। इस स्वेच्छा पूर्वक एकीकृत होने की स्थिति में अत्यधिक तीव्रता के साथ एवं निरंतरता के साथ ऊर्जा का प्रादुर्भाव होता है। यही ऊर्जा अपने अंदर आदि मातृ एवं पितृ शक्ति के गुणों से सम्पुट होती है और इस प्रकार गणेश शक्ति का प्रादुर्भाव होता है। गणेश शक्ति, शिव शक्ति, आदि भगवती शक्ति इन सबका व्यक्तिगत अस्तित्व भी है परन्तु वह निराकार है साकार रूप में तो यह सब एक-दूसरे में एकीकृत होते हैं। शिव और शक्ति का एकीकरण गणेश को निर्मित कर रहा है। माता-पिता एकीकृत होते हैं तो फिर संतान उत्पन्न होती है और संतान माता-पिता को एकीकृत करने में सहायता प्रदान करती है। इस प्रकार संतुलन का निर्माण होता है। इसी संतुलनात्मक निर्माण से परिवार का जन्म होता है और परिवार में सभी का अस्तित्व समान महत्व रखता है अन्यथा व्यवस्था खण्डित या त्रुटिपूर्ण मानी जायेगी। यही कारण है कि पूर्णता से पूर्णता ही उत्पन्न होती है। शेरनी के गर्भ से शेर ही उत्पन्न होता है क्योंकि एकीकरण क्रियाशील है शेर घोड़े के साथ सहवास नहीं कर सकता और न ही सहवास से कुछ नया जीव उत्पन्न हो सकता है। किसने इतनी त्रुटिरहित व्यवस्था उत्पन्न की, कौन सी वह शक्ति है? यह जरूर सोचना पड़ेगा अन्यथा इस शक्ति के अभाव में प्रतिदिन एक नया विचित्र जीव उत्पन्न होगा। क्यों मिलान नहीं हो पाता मनुष्य और पक्षी का। कल्पना करें अगर मनुष्य और सर्प का मिलान हो जाय, मनुष्य और किसी अन्य जीव का मिलान हो जाये तो फिर इस पृथ्वी पर किस प्रकार का जीवन या समाज प्रादुर्भाव में आयेगा। यह सब व्यवस्था मनुष्य ने तो नहीं निर्मित की है। मनुष्य की औकात ही क्या है एकीकरण करने की। मनुष्य का अगर बस चले तो फिर ऐसा एकीकरण होगा कि आप कांप उठेंगे। वह अपने अंदर बीस हाथ उगा लेगा, बीस-बीस आँखें उगा लेगा। वह तो इतना कामातुर है कि उसका बस चले तो सैकड़ों लिङ्ग उगा ले परन्तु ऐसा नहीं हो सकता। मनुष्य के ऊपर चौबीस घण्टे नियंत्रण रहता है तुरंत ही शिव प्रलय कर देंगे क्योंकि इससे एक ब्रह्माण्डीय परिवार की व्यवस्था ही छिन्न-भिन्न

हो जायेगी। एक कहानी सुनाता हूँ-

एक बार यूनान के मनुष्य अत्यंत ही शक्तिशाली हो गये। उन्होंने मस्तिष्क को चर्मोत्कर्ष तक विकसित कर लिया। ईश्वर ने अपने देवदूत को पृथ्वी पर भेजा उन्हें परखने के लिए। देवदूत ने तीन बच्चों को खेलते हुए देखा उसने उनसे पूछा कि बच्चों तुम बता सकते हो इस समय देव दूत कहाँ पर है? एक बच्चे ने तुरंत ही पृथ्वी की परिक्रमा लगा डाली वह बोला मैं सब जगह ढूँढ आया वह कहीं भी नहीं है। दूसरे ने स्वर्गलोक तक चेतना के द्वारा देवदूत को खोज डाला और बोला वो वहाँ भी नहीं है। तीसरे ने अपनी शक्ति के द्वारा देवदूत को पाताल और समुद्र में भी खोज डाला। बोला वह तो वहाँ भी नहीं हैं। देवदूत उनकी शक्ति देखकर चकित रह गया। फिर तीनों बोले जरूर हम चारों में से ही कोई देवदूत है। देवदूत ने तुरंत जाकर ईश्वर के समक्ष यथा स्थिति रखी और दूसरे ही क्षण पृथ्वी पर प्रलय हो गया। पुनः सृष्टि का निर्माण प्रारम्भ हो गया। अब आप समझ गये कि बार-बार इस पृथ्वी पर प्रलय, हिमयुग इत्यादि क्यों आते हैं? प्रलय या हिमयुग एकीकरण की व्यवस्था के लिए ही सम्पन्न किए जाते हैं। द्वापर में काशीराज भगवान श्रीकृष्ण से अत्यंत ही बैर भाव रखते थे। पौंड्रक जो कि उनका मित्र था उसकी मृत्यु के पश्चात् काशीराज ने क्रुद्ध होकर द्वारका के ऊपर शिव कृत्या प्रयोग के द्वारा अग्नि वर्षा कर दी थी। इस पर न चाहते हुए भी श्रीकृष्ण ने अपने सुदर्शन चक्र के द्वारा समूची शिव नगरी काशी को जलाकर भस्म कर दिया था एवं शिव भक्त काशीराज का सिर धड़ से अलग कर काशी के द्वार पर फेंक दिया था। ऐसा करना ही पड़ता है। श्रीकृष्ण रूपी शक्ति ने भी गायत्री मंत्र की 24 शक्तियों में अपना स्थान सुरक्षित किया है। कृष्ण की परा शक्ति को भी ऐसे ही मान्यता नहीं मिल गई। उन्हें भी घोर युद्ध करना पड़ा है स्वयं महादेव, कार्तिकेय इत्यादि से। इन्द्र को भी उन्होंने परास्त किया है। ब्रह्मा के दम्भ को भी तोड़ा है तब कहीं जाकर कृष्ण प्रतिष्ठित हुए हैं। यह तो हुई स्थूल कृष्णावतार की बात सूक्ष्म ब्रह्माण्डीय कृष्णत्व को भी इस प्रक्रिया से गुजरना पड़ता है। मान्यता के अभाव में एकीकरण सम्भव नहीं है। एकीकरण और विलीनीकरण की प्रक्रिया अद्भुत है। बुद्ध ने भी अपनी पत्नी और पुत्र को दीक्षा दी वे बुद्धत्व में विलीन हो गये। कहीं भी

इतिहास में उनका जिक्र नहीं है। बुद्ध ने उन्हें स्थापित नहीं किया। केवल स्वयं से एकीकृत किया। एकीकृत अर्थात् समय आने पर स्वयं ही वे प्रकट हो जायेंगे। ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार नदी का जल समुद्र में विलीन हो जाता है अपनी पहचान खो बैठता है, स्वयं का अस्तित्व शून्य हो जाता है। तत्पश्चात् पुनः समुद्र उसी जल को संशोधित करते हुए उचित समय पर वर्षा के बादलों में परिवर्तित करता हुआ पुनः नदियों को जलमय बना देता है। अब यहाँ पर बताएँ कहाँ अस्तित्व नष्ट हुआ। अनंत वर्षों से गंगा समुद्र में मिल रही है फिर भी उसका अस्तित्व बना हुआ है। किसी भी घाट पर गंगा सूखी दिखाई नहीं पड़ती। अगर इतनी छोटी सी बात मनुष्य समझ ले तो फिर अस्तित्व रूपी जात, वर्ण, लिङ्ग, देश, राष्ट्र जैसे झगड़े दो मिनिट में खत्म हो जायेंगे। गायत्री मंत्र आकाश-पाताल और भूलोक तीनों को एकीकृत करता है यही विश्वामित्र का रहस्य चिंतन है, यही उनका दिव्य ज्ञान है। इसी ज्ञान को प्राप्त करके ही वे ब्रह्मऋषि कहलाए। गुरु दीक्षा हजार प्रकार से दी जाती है। सामान्य लोगों को गुरु मंत्र पढ़वाकर दीक्षा सम्पन्न की जाती है। इससे कुछ मात्रा में गुरु और शिष्य का एकीकरण होता है। शक्तिपात करके भी एकीकरण किया जाता है। पानी में शक्कर घोलकर उसे मीठा बनाया जा सकता है। गुरुदीक्षा में त्वं प्राण मम प्राण त्वं देह मम देह इत्यादि उच्चारण भी कराये जाते हैं अर्थात् तुम्हारे प्राण मेरे प्राण एक ही हैं तुम्हारा शरीर मेरा शरीर एक ही है। ऐसे भी गुरु दीक्षा प्रदान की जाती है। यह बहुत कम लोगों के साथ किया जाता है। मैंने इस प्रकार आज तक दीक्षा सम्पन्न नहीं की है कोई मिला ही नहीं। इसके ऊपर भी अनेकों स्थितियाँ हैं। दीक्षाएँ तो नग्न करके भी सम्पन्न की जाती हैं। खैर जाने दीजिए इन बातों को इनका स्तर बहुत ऊँचा है। पत्रिका हर बात के लिए नहीं बनी है। कहने का तात्पर्य यह है कि हर ताले को एक ही चाबी से नहीं खोला जा सकता इस पृथ्वी पर अनेकों बार आपको एक जैसी घटनाएँ अनेकों व्यक्तियों में दिखाई पड़ेंगी। 1970 में जन्में व्यक्तियों के जीवन में बहुत सी समानताएँ देखने को मिलेंगी क्योंकि उस समय विशेष में ज्योतिष गणना भी समान ही होती है। यह सब एकीकरण के अंतर्गत आता है। द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात् एक वर्ष के भीतर जितने भी लोगों ने जन्म लिया उन सबमें बालों

का जल्दी सफेद होना, शरीर के ऊपर घाव का निशान दिखाई पड़ना, दाँतों का शीघ्र अतिशीघ्र क्षय हो जाना जैसी स्थितियाँ दिखाई पड़ी क्योंकि विश्व युद्ध के समय करोड़ों की संख्या में अकाल मौँते हुई थीं जिसके कारण अनेकों व्यक्तियों ने जीवन पूर्ण करने से पहले ही घाव युक्त होकर शरीर त्यागा था। ऐसा ही एकीकरण स्थान विशेष पर रहने वाले लोगों में भी दिखाई देता है। कुछ गाँव में तो लोग तीस वर्ष की उम्र में ही वृद्ध हो जाते हैं राजस्थान के कुछ गाँवों में तो सभी कुबड़े होते हैं। एकीकरण के खतरनाक-खतरनाक पक्ष भी हैं अगर आपकी अनुवांशिकता में किसी रोग या प्रवृत्ति विशेष ने एकीकरण कर लिया तो फिर आने वाली संताने अभिशप्त होंगी। यही महत्व है जन्म कुण्डली एवं गुरुओं के द्वारा विवाह से पूर्व वर-वधू के गुणों के मिलान का। आप ध्यान क्यों करते हैं, पूजा क्यों करते हैं क्योंकि आप एकीकृत होना चाहते हैं सम्पन्नता से निरोगता से आनंद से इत्यादि-इत्यादि। आप चाहते हैं कि जन्म से लेकर मृत्यु तक हम धन-धान्य से पूर्ण हों, स्वस्थ, सुन्दर हों एवं आनंदमय हों। सभी क्रियाओं में किसी न किसी से एकीकरण की चाहत होती है इसीलिए प्रत्येक अनुष्ठान से पहले संकल्प लिया जाता है। चाहत-इच्छा एवं इससे ऊपर उठकर प्रज्ञा शक्ति ही एकीकरण की प्रक्रिया में मुख्य भूमिका निभाती है। एकीकरण और विलीनीकरण में थोड़ा फर्क है विलीनीकरण में गुण विशेष का महत्व न्यून है। जबकि एकीकरण में गुण विशेष अत्यधिक महत्व रखते हैं। कृष्ण के साथ अर्जुन रथ पर खड़े हैं युधिष्ठिर, भीम और नकुल इत्यादि नहीं। महाभारत युद्ध से पूर्व अर्जुन ने गाण्डीव रखकर शोक संतप्त होते हुए लगभग पच्चीस मिनट तक कृष्ण जैसे जगद्गुरु से नाना प्रकार के पश्च पूछे कृष्ण ने भी बड़ी धीरता से अपने प्रथम शिष्य के प्रश्नों का जबाव दिया फिर भी एकीकरण नहीं हो पा रहा था पूर्ण रूप से। काफी हद तक अर्जुन का मस्तिष्क अर्थात् शिष्य का मस्तिष्क कृष्ण को समझने लगा था। मस्तिष्क के समझ लेने से कुछ नहीं होगा। पत्रिका के पढ़ लेने से कुछ नहीं होगा। अंत में कृष्ण ने अर्थात् गुरु ने अर्जुन को कुछ दिखा दिया। वह विलक्षण दृश्य वह विलक्षण प्रकाश जिसे सात जन्मों में भी अर्जुन का मस्तिष्क नहीं देख पाता तब जाकर वह प्रभु-प्रभु चिल्लाया और पूर्ण रूप से कृष्णमय अर्थात् गुरुमय हो पाया। गुरु को मेहनत करनी ही पड़ती है। सभी शिष्य अर्जुन के समान नहीं होते। संशय-असंशय उनका चरित्र होता है और होना भी चाहिए इसमें कोई बुरी बात नहीं है।

तभी तो गीता का जन्म होगा। तभी तो गुरु वाणी फूटेगी, तभी तो कृष्ण का महत्व खुलेगा नहीं तो कृष्ण सिर्फ बंशी से ही एकाकार कर सम्मोहन-कारी धुन बजाते रहेंगे। कृष्ण ने द्वापर में जितने भी राजा थे उन सबकी पुत्रियों से विवाह किया। इस प्रकार पूरब से पश्चिम और उत्तर से दक्षिण तक समस्त विश्व के राजाओं के वे दामाद हो गये। कृष्ण की प्रत्येक रानी से दस-दस पुत्र उत्पन्न हुए। इनका विवाह भी कृष्ण ने अपनी माया के द्वारा अपने विरोधी राजाओं की बहनों या पुत्रियों से करवा दिया। थक हारकर सभी वंशों में कृष्णत्व फलने-फूलने लगा। देखते ही देखते समस्त विश्व स्थूल रूप से भी कृष्णमयी हो उठा। कृष्ण की लीला कृष्ण ही जाने। उनके जैसा चमत्कृत अवतार आज तक नहीं हुआ है। वे चौंसठ कलाओं में निपुण हैं। वेदव्यास को महाभारत लिखनी थी उन्होंने शिव स्तवन किया। शिव और माता पार्वती से अनुरोध किया कि गणेश को आज्ञा प्रदान करें महाभारत लिखने की। महाभारत का प्रादुर्भाव करने के लिए उन्हें गणेश के संग की ही आवश्यकता थी। यह उपयुक्त चुनाव था। एकीकृत होने के लिए उपयुक्त गुरु ढूँढिये नहीं तो जीवन भर अध्यात्म से एकीकृत नहीं हो पायेंगे। एकीकृत होने के लिए ही ऋषि-मुनि सुदूर हिमालय की गुफाओं में जाकर ध्यानस्थ होते हैं। इसके पीछे अनेकों राज हैं। वे उन स्थानों को ढूँढते हैं जहाँ पर सूक्ष्म देव शक्तियाँ एकीकृत रूप में वास करती हैं। शहरों में भूत रहते हैं देव शक्तियाँ नहीं। रात्रि को जैसे ही आप सोते हैं शरीर की समस्त देव शक्तियाँ एकीकृत हो दिनभर के बिखराव को पुनः एकीकृत करने में जुट जाती हैं। आप भी कमरा बंद करके प्रत्येक दिन शांत भाव से स्वयं को एकीकृत कीजिए, स्वयं को निहारिए, स्वयं में खोइये। यही है योगमाया विष्णु जब लड़ते-लड़ते थक जाते हैं तब योगमाया उन्हें क्षीर सागर में पूर्ण विश्राम की स्थिति में ला देती हैं। योगमाया ही विष्णु का अमृत है। माता की गोद में ही बालक चैन की नींद सोता है। एकीकृत होना अर्थात् शक्ति संचय। कृष्ण को भी राधा शक्ति के रूप में प्रेममयी योगमाया का सानिध्य था। जो निरंतर युद्धरत हो उसके मस्तिष्क को भी विश्राम की तीव्र आवश्यकता होती है बस यहीं से प्रेमिका का उदय होता है इसीलिए सब प्रेमिका को ढूँढते हैं, सब माता की गोद चाहते हैं। उम्र के प्रत्येक पड़ाव पर मनुष्य बालक ही रहता है। बाल्यावस्था कभी नहीं मरती। माता गायत्री ही सबकी माता हैं। वही एकीकृत करती हैं।

गायत्री मंत्र के दृष्टा ब्रह्मर्षि विश्वामित्र

ब्रह्मर्षि विश्वामित्र और गायत्री मंत्र आपस में इतने घुल मिल गये हैं कि उनका विभाजन सम्भव ही नहीं है। एकीकरण तो हो ही जाता है और क्यों न हो वे ही तो परम पवित्र आदि शक्ति माँ गायत्री के प्रकाश को मंत्र के रूप में इस धरा पर बिखेर रहे हैं। विश्वामित्र का जीवन और गायत्री मंत्र एक दूसरे के पर्याय बन गये हैं। जब-जब रामायण पढ़ी जायेगी वाल्मीकि को भी याद किया जायेगा। उन्होंने ही रामकथा को अमरता प्रदान की है यह तभी सम्भव होता है जब व्यक्ति विशेष अपने समस्त कर्मों को पूर्ण तन्मयता के साथ एक अलौकिक एवं दिव्य कल्याणकारी कार्य के लिए समर्पित कर देता है। इस स्थिति में उसके स्वयं के अस्तित्व का कोई मूल्य नहीं रहता बस मूल्य रहता है तो सिर्फ उसके द्वारा अनुभूत किये गये सत्य का। सत्य की अनुभूति ही व्यक्ति को अमर बनाती है। राम ने रामत्व को अनुभूत किया, उसे कर्मों के द्वारा प्रसारित किया एवं स्थापित किया और समस्त जीवन उसी के अनुसार आचरण किया। कृष्ण ने कृष्णत्व को अनुभूत किया और कृष्णत्व का पर्याय बन गये। बुद्ध ने सत्य के रूप में बुद्धत्व को ग्रहण किया। सम्पूर्ण रूप से बुद्धमय बनने के कारण ही वे अमर हो गये। अब सवाल उठता है कि कृष्ण ने ही कृष्णत्व क्यों ग्रहण किया? विश्वामित्र के अलावा कोई और गायत्री मंत्र का दृष्टा क्यों नहीं बन पाया? यह बात ठीक वैसी ही है जैसे कि आइंस्टाइन

के अलावा कोई अन्य ने पहले कभी सापेक्षतावाद का सिद्धांत क्यों नहीं दिया? इसके कई पहलू हैं। हो सकता है किसी ने अनुभूत जरूर किया हो परन्तु वह उसे प्रसारित न कर पाया हो क्योंकि सापेक्षतावाद का सिद्धांत तो अनंतकाल से चलायमान है। गुरु ग्रह के सत्रह चन्द्रमा हैं परन्तु अगर यह कोई विशेष वैज्ञानिक स्वयं की ऊर्जा खर्च करके प्रमाणित करता है तो फिर उसे मानव जगत में कम से कम अमरता तो प्राप्त हो ही जाती है। मानव जगत की अमरता एवं वास्तविक अमरता में जमीन आसमान का फर्क है। मानव जगत में अमर होने का तात्पर्य है मानव मस्तिष्कों में अनंतकाल के लिए सार्वभौमिक रूप से आपके नाम का अंकित हो जाना। आपका नाम इतना ऊर्जामय हो जाय कि जब किसी नई पीढ़ी में आपका नाम लिया जाय तो फिर एक सकारात्मक स्पंदन उत्पन्न हो। एक प्रेरणादायक विभूति के रूप में जीव विशेष प्रतिष्ठित हो सके यह कहलाता है परम उत्पादन। परम उत्पादन का तात्पर्य है सत्य को अनुभूत करना। सत्य केवल अनुभूत किया जा सकता है, उसका चित्र नहीं खींचा जा सकता। अनुभूत किया हुआ सत्य मानव मस्तिष्क के द्वारा सिद्धांत एवं मंत्र रूपी विशुद्ध अर्क में उदित होता है। गायत्री शक्ति के इस मंत्र के प्रत्येक अक्षर का देवता अलग है। एक-एक शब्द अपने आप में इतना प्रचण्ड है कि उसके ऊपर पूरा का पूरा एक शास्त्र लिखा जा सकता है। महाबीज

के अंतर्गत अनेकों बीज रूपी शक्तियाँ स्थित होती हैं। दो तरीकें हैं विश्वामित्र को समझने के। एक इन्हें मनुष्य के रूप में ऐतिहासिक तथ्यों पर भी समझा जा सकता है और दूसरी तरफ अध्यात्मिक रूप से भी उनके अंतर्मन में चलने वाली सूक्ष्म शक्तियों के रूप में भी समझा जा सकता है। विश्वामित्र वह विराट व्यक्तित्व है जिसने समय की धारा को मोड़ दिया, जिसका जीवन द्वापर और त्रेता दोनों युगों में फैला हुआ है। वह साक्षी है राम का भी और कृष्ण का भी। उसी के काल में यह दोनों दुर्लभ अवतार आर्यावर्त में अवतरित हुए हैं। विश्वामित्र गुरु भी हैं राम के। वह एक योद्धा भी हैं एवं एक सम्पूर्ण विद्रोही व्यक्तित्व के रूप में भी उदित होते हैं। आर्य सभ्यता की जड़ों में उन्होंने गायत्री शक्ति को भरा है। विश्वामित्र में ही इतनी ताकत थी कि उन्होंने ब्रह्माण्ड से गायत्री शक्ति के निचोड़ को प्राप्त कर लिया। यह आसान काम नहीं है। राम का सम्पूर्ण चरित्र विश्वामित्र ने अपने गुरुबल से विकसित किया है। उन्हीं के गुरु बल में राम दिग्विजयी हुए हैं। विश्वामित्र एक क्रांतिकारी व्यक्तित्व के रूप में भी उभरे हैं। विश्वामित्र के काल को संक्रमण काल भी कह सकते हैं। एक तरफ आर्यों की श्रेष्ठ, पूर्ण वैज्ञानिक एवं अनुसंधान परख नस्ल पृथ्वी के प्रत्येक हिस्से में पैर जमा रही थी तो दूसरी तरफ अनार्यों की भी पूरी फौज थी। वह युग आज के युग की अपेक्षा अत्यधिक हिंसक युग था। सभ्यताओं की टकराहट तो प्रत्येक युग की अवश्यम्भावी घटना है। जितने घनघोर युद्ध हिंसा वैष्णव अर्थात् विष्णु उपासकों और शैव उपासकों के बीच हुए हैं उनका एकांश भी ईसाई या मुसलमानों या फिर हिन्दु धर्म के मध्य उपस्थित नहीं हुआ है। विष्णु उपासक मुख्य रूप से आर्य रहे हैं। शिव पूजन तो उन्होंने अनार्यों से सीखा है। दोनों ही धाराएँ आधी अधूरी थीं। वशिष्ठ आर्यों के कुलगुरु रहे हैं। वे रक्त सम्बन्धों की विशेषता के घोर समर्थक थे। यह उनका चिंतन था। दूसरी तरफ परम तेजस्वी क्षत्रियत्व से युक्त विश्वामित्र जैसे राजा भी थे जिन्हें शासन करना था। विश्वामित्र अपने प्रारम्भिक

काल में एक दुर्दान्त राजा के रूप में उदित हुए हैं जिसके पास कई रानियाँ थी, जो कि सामान्य योद्धाओं की तरह केवल तलवार के जोर को ही श्रेष्ठ समझता था। इसी जोर पर वह लक्ष्मी को प्राप्त करना चाहता था। तलवार की जोर पर उन्होंने अश्वमेध यज्ञ शुरू कर दिया। जीतते-जीतते वशिष्ठ के आश्रम तक पहुँच गये। उन्होंने देखा कि जो मैं तलवार की जोर पर प्राप्त नहीं कर सका वह वशिष्ठ ब्रह्म विद्या के द्वारा प्राप्त कर चुके हैं। ब्रह्म विद्या से युक्त वशिष्ठ के हजारों शिष्य आराम से आनंदपूर्वक जीवन यापन कर रहे हैं, कामधेनु वशिष्ठ के आश्रम में विराजमान हैं और यहाँ तक कि विश्वामित्र वशिष्ठ के अनुचरों द्वारा बंदी बना लिए गये। ब्रह्म विद्या के आगे तलवार का जोर नहीं चलता। विश्वामित्र टूटे। उन्हें एक नई दुनिया दिखाई दी ब्रह्म वर्चस्व की। ब्रह्मवर्चस्व वह कला है जिसके अंतर्गत ब्रह्म दण्ड, ब्रह्म ज्ञान और ब्रह्म विज्ञान आता है। ब्रह्म विद्या के अंतर्गत ही ब्रह्मास्त्र आता है। योद्धा रूपी विश्वामित्र को अपनी दरिद्रता समझ में आ गई उन्होंने भी ब्रह्म विद्या प्राप्त करने के लिए सब कुछ त्याग दिया। राजा से संन्यासी बन गये परन्तु अभी बाहरी आवरण गया था। क्रोध तेज में परिवर्तन हो गया और तेज भी विशुद्ध न होकर अहम् मिश्रित हो गया। शुद्धता इतनी जल्दी नहीं आती। शुद्धता का ही नाम ब्रह्मत्व है। पूर्ण शुद्धता का नाम ही परम तत्त्व है। राजर्षि तो बन बैठे परन्तु ब्रह्मर्षि की उपाधि से कोसों दूर थे। विश्वामित्र वह व्यक्तित्व है जिसने सर्वप्रथम अनार्य स्त्री से विवाह किया। एक सामाजिक क्रांति उत्पन्न की। वशिष्ठ ने घोर विरोध किया। आर्य राजा के रूप में उन्हें स्वीकार करने से भी मना कर दिया। सूक्ष्मता से देखें तो विश्वामित्र ही विक्रमादित्य का वंशज हैं क्योंकि वह भी अत्यधिक हठी थे। स्वयं अपनी राह बनाने वाले तेजस्वी आर्यों का तेज ही विश्वामित्र की पहचान है। टूटन तो उनकी जिन्दगी का हिस्सा है। हार और जीत जीवन का खेल है। राजा के रूप में वशिष्ठ के सामने परास्त हुए। इन्द्र से भी युद्ध कर बैठे। स्वयं स्वर्ग रचने का अनुष्ठान कर

बैठे। क्षत्रिय जब अध्यात्म की शक्ति से मिश्रित होते हैं तो प्रारम्भ में ऐसे ही मूर्खतापूर्ण कार्य करते हैं। नारियल के वृक्ष से मनुष्य बनाने की कोशिश करने लगे। ब्रह्मा के समझाने बुझाने के बाद माने। ऋषि बनने से क्या होता है। कच्चापन ताड़कर इन्द्र ने मेनका भेज दी। मेनका के प्रेम पाश में फँसकर फिर राजऋषि से शून्य हो गये एवं एक सामान्य गृहस्थ बनकर रह गये। एक दिन मेनका ने पल्ला झाड़ लिया। कहीं के नहीं रहे। फिर शुरू किया शून्य से ऊपर उठने का प्रयास। इनका जीवन इतना उतार चढ़ाव पूर्ण था कि शम्भर नामक अनार्य राजा ने इन्हें कैद कर लिया। अपनी जान बचाने के लिए कुत्ते का मांस भी खाना पड़ा। अध्यात्म की राह बड़ी विकट है न जाने कब कौन सी अघोर क्रिया सम्पन्न करनी पड़ जाये। ब्रह्म ऋषि बनना इतना आसान है क्या? बाजार में कुण्डलिनी जागरण दीक्षा देने वाले गुरुओं के चक्कर में इसलिए मत पड़ो। कुण्डलिनी जागरण के लिए बहुत पापड़ बेलने पड़ते हैं। बुद्ध का राजपाट चला गया, वस्त्र चले गये, पत्नी चली गई, फौज फटाका चला गया। फिर ईश्वर कूटता है। विश्वामित्र के दम्भ को कूट-कूटकर ईश्वर ने तोड़ा है। उनकी एक-एक न्यूनता उनके सामने नंगी कर दी। आनंदमय एवं अमृतमय कोष में पहुँचने के लिए ऐसा ही होता है। कुछ गुरुओं ने अपने पुत्रों को अंगूठा लगाकर गुरु बनाने की कोशिश की। यह ठीक उसी प्रकार है जिस प्रकार से विश्वामित्र ने त्रिशंकु को सशरीर स्वर्ग भेजने की कोशिश की। यह सीधा-सीधा प्रकृति में हस्तक्षेप है। त्रिशंकु कहीं का नहीं रहा लात मारकर स्वर्ग से निकाल दिया गया। विश्वामित्र भी थक हारकर बैठ गये। विश्वामित्र की मूर्खतापूर्ण क्रियाएँ भी बहुत कुछ सिखाती हैं। विश्वामित्र मस्तिष्क पर चल रहे हैं यह ब्रह्मऋषि का मार्ग है। यह ईश्वर का मार्ग नहीं है। इस मार्ग में हृदय कमल नहीं खिलता। जब आँखों में आँसू आते हैं तब हृदय कमल खिलता है। जब वासना शांति होती है तब समझ में आता है कि मातृ शक्ति क्या है। जीवन में कुटते-पिटते, टूटते-फूटते विश्वामित्र ने अंत में

हिमालय की शरण ली। वहाँ जाकर एकाग्र चित्त हुए। जीवन की सच्चाई समझ गये। अचानक एक दिन सूर्योदय के समय उनके अंदर भी सूर्य उदित हो गया और सम्पूर्ण शरीर भर्ग-भर्ग के परम नाद से गुंजायमान हो उठा। आदि शक्ति माँ गायत्री साक्षात् प्रकट हो गई और अपने पुत्र विश्वामित्र को अपना अर्क और तेज परम सत्य के रूप में प्रदान कर दिया। उनकी स्तुति में पुत्र के मुख से जो कुछ प्रतिस्फुटित हुआ वही है आज का गायत्री मंत्र। विश्वामित्र ने भी राजऋषि के रूप में शिष्यों की जमात खड़ी कर दी। तेज के बल पर कंकड़ पत्थर इकट्ठे करने से क्या होगा। राजऋषि कंकड़ पत्थर इकट्ठे कर लेते हैं। भीड़ तंत्र उनके दम्भ को प्रकट करता है परन्तु ब्रह्मऋषि अनमोल रत्नों को इकट्ठा करते हैं रत्न रूपी मनुष्य को एकत्रित करते हैं, संगठित करते हैं। पुरुष का चरित्र है दम्भ। जिसमें दम्भ होगा वह स्त्री को मातृ रूप में क्या देखेगा। उसके लिए स्त्री सिर्फ भोग्या है। विश्वामित्र के शिष्य भूखे मरने लगे। जब गुरु ही भूखा होगा तो शिष्य कहाँ से भर पेट खाना खायेंगे। विश्वामित्र ने सत्य को पहचाना पुनः एक बार लक्ष्मी की मातृ स्वरूप में आराधना शुरू की। लक्ष्मी उन्हें ही सिद्ध होती है जिसे स्वयं वह पुत्र के रूप में स्वीकार कर ले। आपके माता स्वरूप में स्वीकार करने से कुछ नहीं होगा। जरा सी भी न्यूनता दिखाई पड़ने पर चाहे आप लाख जतन कर लें वह कभी प्रत्यक्ष नहीं होगी। लक्ष्मी पुत्र बनना इतना आसान नहीं है केवल ब्रह्मऋषि ही लक्ष्मी पुत्र होते हैं। एक बार तो क्रोध में आकर विश्वामित्र ने वशिष्ठ के कई हजार पुत्र रूपी शिष्यों का वध भी कर डाला था फिर भी वशिष्ठ ने देखा कि विश्वामित्र अब परिवर्तित हो गया है, गायत्री शक्ति से युक्त हो गया है, निर्मलता ही निर्मलता बची है तो वे स्वयं दौड़ पड़े विश्वामित्र को गले लगाने और बोल पड़े आओ ब्रह्मऋषि। विश्वामित्र वशिष्ठ के चरणों पर गिर पड़े। सत्य से आभामण्डित विश्वामित्र अब ब्रह्मऋषि मण्डल में एक प्रतिष्ठित नक्षत्र बन चुके हैं जिनकी चमक कभी भी क्षीण नहीं पड़ेगी।

दुर्लभ यंत्र

यंत्र के अभाव में आपके पूजागृह अधूरे हैं। हमारे सभी प्राच्य मंदिरों के निर्माण से पहले यंत्रों की स्थापना अवश्य की गयी है इन्हीं यंत्रों की चैतन्य ऊर्जा से आज भी हमारे देव स्थान पवित्र बने हुये हैं। पंचभूतों से निर्मित यह शरीर नाना प्रकार की व्याधियों से जब-तक घिरा रहता है, जीवन में तमाम बाधाएँ, कष्ट, परेशानियाँ, तनाव, क्लेश आदि होते ही रहते हैं। यंत्र ही एक ऐसी शक्ति है जो तमाम विपत्तियों का शमन कर विकास का मार्ग प्रशस्त करते हैं तथा मनुष्य का जीवन सुख, ऐश्वर्य, धन, धान्य से परिपूर्ण हो जाता है। ऐसे ही कुछ दुर्लभ यंत्रों को हमने दिव्य मंत्रों से प्राण प्रतिष्ठित व चैतन्य किया है। वैदिक विधि, विधान से ताम्र पत्र पर अंकित इन यंत्रों की शक्ति व प्रभाव आप स्वयं महसूस करेंगे-

✽ मंगल यंत्र	60/-	✽ संतान गोपाल यंत्र	135/-
✽ सरस्वती यंत्र	75/-	✽ हनुमान यंत्र	140/-
✽ वशीकरण यंत्र	75/-	✽ सर्वकार्य सिद्धि यंत्र	140/-
✽ कृष्ण यंत्र	80/-	✽ धनदा यंत्र	140/-
✽ बगलामुखी यंत्र	80/-	✽ महामृत्युञ्जय यंत्र	150/-
✽ महाकाली यंत्र	85/-	✽ व्यापार वृद्धि यंत्र	150/-
✽ हरिद्र गणेश यंत्र	90/-	✽ कनकधारा यंत्र	150/-
✽ रामरक्षा यंत्र	90/-	✽ सुख समृद्धि यंत्र	150/-
✽ श्री दुर्गा यंत्र	90/-	✽ शनि यंत्र	175/-
✽ गुरु यंत्र	90/-	✽ पुत्र प्राप्ति यंत्र	180/-
✽ भैरव यंत्र	90/-	✽ कालसर्प योग यंत्र	190/-
✽ गायत्री यंत्र	100/-	✽ वैभव लक्ष्मी यंत्र	200/-
✽ शिव यंत्र	100/-	✽ महावीर यंत्र	201/-
✽ नवगृह बाधा निवारण यंत्र	125/-	✽ कुबेर यंत्र	201/-
✽ सम्मोहन यंत्र	130/-	✽ वाहन दुर्घटना यंत्र	201/-

नोट: उपरोक्त यंत्र किसी धातु के टुकड़े न होकर पूर्ण वैदिक विधान से चैतन्य किये गये जीवित जागृत शरीर हैं अतः इनकी तुलना अन्य जगहों पर उपलब्ध यंत्रों से न करें।

यंत्र प्राप्त करने के लिए आप ड्राफ्ट/मनीआर्डर के साथ अपना नाम, पिता/पति का नाम, गोत्र एवं पूरा पता अवश्य लिखकर भेजें तत्पश्चात् सात दिनों के बाद आपको यंत्र प्रदान किये जायेंगे।

नोट: उपरोक्त सामग्री मनीआर्डर अथवा ड्राफ्ट द्वारा निर्धारित राशि
(20 रुपये डाक व्यय सहित) भेजने पर ही उपलब्ध हो सकेगी।

सम्पर्क

साधना सिद्धि विज्ञान

फ्लेट नं. 1,2 मिनाल व्यू-II पंजाबी बाग भोपाल दूरभाष : (0755) 576346, 591143

उदर शूल (पेट में दर्द/ऐंठन)

(सुप्रसिद्ध होम्योपैथ डॉ. साधना द्वारा)

पेट का दर्द प्रायः कई कारणों से होता है जैसे खाना हजम न होना, कब्ज, पेट में वायु संचय, दस्त, पेचिस, पथरी या फिर स्त्रियों में मासिकधर्म की गड़बड़ी आदि पेट दर्द के कारण हो सकते हैं इसके अलावा कभी-कभी भारी या उत्तेजक पदार्थों अथवा ठण्डी वस्तुओं के सेवन, ठण्ड या ओस लगने या फिर पसीने को रोकने अथवा कृमियों के कारण भी पेट में ऐंठन के साथ-साथ दर्द होता है। कभी-कभी पेट में दर्द के साथ-साथ उल्टी की शिकायत भी होती है जिसे अम्ल शूल कहा जाता है।

पूर्व वर्णित किसी भी कारण से पेट में दर्द होने पर बार-बार पखाना लगना, नाभि के आसपास मरोड़ अथवा खिंचाव जैसा दर्द होना, दबाने से आराम महसूस होना, उबकाई आना, उल्टी होना तथा डकारें आना आदि लक्षण प्रकट होते हैं। कभी-कभी आँतों की पेशियों में अकड़न के कारण भी पेट दर्द होता है।

किसी भी कारण से उदर शूल (पेट में दर्द) की शिकायत होने पर लक्षणानुसार निम्नलिखित होमियोपैथिक औषधियों का सेवन करने से लाभ होता है :-

- ❖ नाभि के चारों ओर काटने या मरोड़ जैसी असहनीय वेदना होना जिससे रोगी दर्द से छटपटाने लगे, पेट को दबाने से आराम महसूस होना या फिर शरीर को दोहरा कर लेने से थोड़ी राहत मिलना, अत्यधिक परेशान होने के कारण पेट में दर्द होना, दर्द के साथ-साथ उल्टी होना, अत्यधिक क्रोध या नाराजगी से तकलीफ बढ़ जाना, आँतों को मसले जाने जैसी अनुभूति होना, रोगी का सीधे न खड़े रह पाना जैसे लक्षणों में **कोलोसिन्थ 30, 200, 6** लाभप्रद औषधि है।
- ❖ लिवर से लेकर दाहिनी छाती तक असहनीय वेदना होना, दर्द का नाभि के स्थान से शुरू होकर शनैः शनैः पेट और फिर पूरे शरीर में फैल जाना, दुर्गन्धयुक्त डकारें आना, अपान वायु का अत्यधिक निस्सरण, रोगी का आगे की ओर न झुक पाना, सीधे खड़े होने अथवा पीछे की ओर झुकने से राहत मिलना, पेट में हवा भरी होने के कारण गड़गड़ाहट होना, कुछ भी खाने पर खाई हुई वस्तु की उल्टी होने के साथ-साथ पेट में असहनीय वेदना होना जैसे लक्षणों में

डायस्कोरिया 3, 30
हितकर औषधि है।

- ❖ रोगी के पेट में असहनीय दर्द होना, शरीर को दोहरा करने पर भी आराम न होना, रोगी का संवेदनशून्य हो जाना, अत्यधिक क्रोध के कारण दर्द शुरू होना, बच्चों



के पेट में गैस एकत्र हो जाने के कारण तीव्र वेदना होने से बच्चे का दर्द से छटपटाना, नाभि के आसपास मरोड़ या खरोंचे जाने जैसा दर्द होना, रात्रि में अत्यधिक पसीना आना, अत्यधिक गुस्से से, गर्मी व ठण्डे मौसम से अथवा रात्रि में तकलीफ बढ़ जाना जैसे लक्षणों में **कैमोमिला मूल अर्क, 12, 30** लाभप्रद औषधि है।

- ❖ अचानक रोगी के पेट में तीव्र दर्द होना और कुछ देर में ठीक हो जाना, स्त्रियों के गर्भाशय में अथवा मासिकधर्म के समय दर्द होना, शरीर के छोरों में, आमाशय, चेहरे, बस्ति प्रदेश या गर्भाशय में ऐंठन के साथ दर्द होना, पेट को दबाने से आराम होना, ठण्डी हवा या ठण्डे पानी से तकलीफ बढ़ जाना जैसे लक्षणों में **मैग्नीशिया फॉस 2x, 6x, 30, 200** लाभप्रद औषधि है।

- ❖ पेट में होने वाली तीव्र वेदना का समूचे शरीर में फैल जाना, पेट की दीवार मेरुदण्ड की ओर खिंचती हुयी महसूस होना, अपानवायु के निष्कासन में व्यवधान के कारण अत्यधिक दर्द होना, खाद्यनली व आमाशय में संकुचन की अनुभूति होना, लगातार उल्टी होना, पेट दर्द के कारण रोगी का चिल्लाने लगना, चलने-फिरने से तथा रात्रि में दर्द का बढ़ जाना तथा जोर से दबाने या रगड़ने से आराम होना जैसे लक्षणों में **प्लम्बम 6, 30** लाभप्रद औषधि है।

- ❖ पेट में तीव्र दर्द के कारण रोगी का झुककर दोहरा हो जाना, रोगी का शारीरिक रूप से अत्यधिक दुर्बल हो जाना, अत्यधिक पसीना (खासकर माथे पर) आना, बार-बार अधिक मात्रा में पतला तथा सफेद रंग का पखाना होना, भोजन के पश्चात खासकर रात्रि में पेट

फूलना तथा दर्द होना, पेट के निचले हिस्से में दर्द होना, मुँह तथा हाथ पाँव ठण्डे होना, पेट व हाथ पैरों में ऐंठन होना, गर्मी से एवं चलने-फिरने से आराम होना तथा रात्रि में या ठण्डे व नम मौसम में तकलीफ बढ़ जाना जैसे लक्षणों में **वैरेट्रम एल्ब 6** लाभप्रद औषधि है।

- ❖ पेट में अत्यधिक दर्द के कारण रोगी का चेहरा तमतमाने लगना, पेट में बार-बार अचानक दर्द होना और कुछ देर में दर्द का कम हो जाना, नाभि से नीचे दाहिनी ओर इतना अधिक दर्द कि स्पर्श बरदाश्त न होना, बड़ी आँत में वायु अथवा मल एकत्र हो जाने के कारण असहनीय वेदना होना जैसे लक्षणों में **बेलाडोना 30, 200** लाभप्रद औषधि है।
- ❖ बच्चों की नाभि के पास ऐंठन के साथ पेट में दर्द होना, पेट खाली महसूस होना, पेट के बल माँ के कंधे पर लेटने से राहत महसूस होना, दाहिनी ओर लेटने अथवा गर्म पेय से तकलीफ बढ़ जाना, पेट के दर्द का धीरे-धीरे बढ़ना और धीरे-धीरे कम होना, दबाने से आराम महसूस होना जैसे लक्षणों में **स्टैनम 30** हितकर औषधि है।
- ❖ रोगी के पेट में आमाशय के अगरी हिस्से में असहनीय वेदना होना, दर्द का समूचे पेट में फैल जाना, आमाशय में सूजन होना, जलन तथा संकुचन होना, आमाशय में जख्म होना, ऐसीडिटी की शिकायत होना, पसलियों के पिंजरे के केंद्र में नीचे दर्द होना जैसे लक्षणों में **अर्जेण्टम नाइट्रिकम 30, 200** लाभप्रद औषधि है।
- ❖ विषैले भोजन के दुष्परिणामस्वरूप पेट में दर्द होना, आमाशय के विकारग्रस्त होने के कारण आमाशय में जलन के साथ-साथ तीव्र वेदना होना, लिवर तथा प्लीहा के बढ़ जाने के कारण अत्यधिक दर्द होना, काले रंग का रक्त मिश्रित पखाना होना, गर्म भोजन से रोगी को आराम मिलना तथा ठण्डे भोजन के सेवन से तकलीफ बढ़ जाना जैसे लक्षणों में **आर्सेनिक एल्ब 30, 200** हितकर औषधि है।
- ❖ पेट में दर्द के साथ-साथ पित्ताशय के आसपास टीस महसूस होना तथा पित्ताशय से स्राव होना, किडनी के पास टीस भरा दर्द उठना और धीरे-धीरे दर्द का लिवर, प्लीहा व आमाशय तक फैल जाना, पेट को दबाने पर

तकलीफ बढ़ जाना जैसे लक्षणों में **बर्बेरिस बल्गेरिस 30** लाभप्रद औषधि है।

- ❖ नाभि के इर्द-गिर्द लगातार नोचने जैसा दर्द होना, आँत में ऐंठन के साथ-साथ रुक-रुककर असहनीय वेदना होना, आँतों के पास सरकने वाली गाँठ के लगी होने जैसे अनुभव के साथ-साथ कभी कसाव व कभी ढीला महसूस होना, लिवर तथा प्लीहा में वृद्धि के साथ दर्द होना, पथरी के कारण पेट में दर्द होना तथा कब्ज की शिकायत होना जैसे लक्षणों में **चियोनैनथस 30** लाभप्रद औषधि है।
- ❖ लिवर में सूजन के साथ लिवर व पेट में दर्द होना, लिवर में फोड़ा हो जाना या कमजोरी अथवा खाँसी के कारण लिवर के आसपास टीस भरा दर्द होना जैसे लक्षणों में **हिपर सल्फ 30, 200** लाभप्रद औषधि है।
- ❖ पेट में काटता हुआ दर्द होना, पेचिस की शिकायत होना नाभि के पास असहनीय दर्द होना जी मिचलाना जैसे लक्षणों में **इपिकाक 30, 200** हितकर औषधि है।
- ❖ पेट के निचले हिस्से में दायीं ओर से बाईं तरफ फैलने वाली टीस होना, लिवर का विकारग्रस्त होना, पेट पर भूरे रंग के धब्बे दिखाई देना एपेण्डिसाइटिस के कारण पेट में दर्द होना, अपान वायु का लगातार निकलना जैसे लक्षणों में **लाइकोपोडियम 30, 200** हितकर औषधि है।
- ❖ अत्यधिक पेट दर्द के कारण रोगी का झुककर दोहरा होना, भोजन करने के बाद कई घण्टों तक पेट पत्थर की तरह कड़ा रहना, अनियमित आहार-विहार, रात्रि में देर तक जागने या फिर अत्यधिक मदिरापान के कारण पेट दर्द की शिकायत होने पर **नक्सवोमिका 30, 200** लाभप्रद औषधि है।
- ❖ पेट में दर्द के साथ-साथ रोगी को पित्त की उल्टी होना, पीला व दुर्गन्धयुक्त पखाना होना, सुबह दर्द में कमी तथा खासकर गर्मी के मौसम में तकलीफ बढ़ जाना जैसे लक्षणों में **पोडोफाइलम 30, 200** हितकर औषधि है।

कोई भी साधना या मंत्र जप माला के बिना सम्पन्न नहीं होता और यदि माला एवं साधना में प्रयुक्त होने वाली सामग्री प्रामाणिक, अभिमंत्रित और पूर्ण चैतन्य हो तो अभीष्ट सिद्धि का मार्ग आसान हो जाता है।

कर्मकाण्ड, जप, तप, साधना आदि में विश्वास रखने वाले साधकों के लिये हमने विभिन्न प्रकार की मालाओं तथा साधना सामग्री को वैदिक विधि विधान से चैतन्य किया है। सम्पूर्ण सामग्री चैतन्यता प्रदान करने वाले दिव्यतम मंत्रों से प्राण प्रतिष्ठित तथा सिद्ध है जो साधना के पथ पर आपके लिये वरदान सिद्ध होगी-

❀	रुद्राक्ष माला	150/-
❀	स्फटिक माला	200/-
❀	कमलगट्टे की माला	120/-
❀	हकीक माला	120/-
❀	मूँगे की माला	125/-
❀	पीताम्बर (शिव मंत्र युक्त)	300/-
❀	सूर्य यंत्र	150/-
❀	द्वादश ज्योतिर्लिङ्ग यंत्र	150/-

नोट: उपरोक्त सामग्री मनीआर्डर अथवा ड्राफ्ट द्वारा निर्धारित राशि (20 रुपये डाक व्यय सहित) भेजने पर ही उपलब्ध हो सकेगी।

सम्पर्क

साधना सिद्धि विज्ञान

प्लेट नं. 1,2 मिनाल व्यू-॥ पंजाबी बाग भोपाल

दूरभाष : (0755) 576346, 591143

अद्भुत एवं फलदायी चमत्कारी तीव्र लघु प्रयोग

मंत्र तन्त्र यंत्रों का क्षेत्र इतना व्यापक है कि एक-एक बीज मंत्र को सिद्ध करने में वर्षों बीत जाते हैं किन्तु कुछ मंत्रों में ऐसी चमत्कारिक शक्ति समाहित है कि मात्र कुछ मिनटों के प्रयास से साधक को अभीष्ट सिद्ध प्राप्त हो जाती है। यहां कुछ ऐसे ही तीव्र प्रभावशाली यंत्रों के निर्माण की विधि दी जा रही है जिन्हें 'दीपावली' के पावन पर्व पर महालक्ष्मी की कृपा से सिद्ध किया जा सकता है।

अद्भुत लक्ष्मी प्राप्ति यंत्र

ॐ	ह्रीं	श्री	क्लीं	महा
ग्र	हं	न	मः	लक्ष्म
घ	र	णे	न्द्र	पद्मा
स	हि	ता	य	वती
ह्रीं	श्रीं	न	मः	नमः

दीपावली के शुभ मुहूर्त में या फिर रवि पुष्य नक्षत्र में इस यंत्र का निर्माण कर नीचे वर्णित मंत्र का 12005 जप करने से साधक को लक्ष्मी की प्राप्ति होती है। यह यंत्र सोने चांदी या तँबे के पत्र पर भी बनाया जा सकता है अन्यथा केसर व अष्टगंध की स्याही बनाकर मोरपंख की कलम से इस यंत्र को लिखना चाहिए। यंत्र निर्माण

में जितना समय लगे उस दौरान ॐ श्री श्रिये नमः का निरंतर जप करना चाहिए। सर्वप्रथम मानसिक गुरु पूजन कर गुरु की आज्ञा प्राप्त करें फिर गुरु मंत्र की एक माला जप करें तत्पश्चात् यंत्र का पूजन कर मंत्र जप करें-



मंत्र-

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं अर्हं नमः महालक्ष्म्यैः
धरणेन्द्र पद्मावती सहिताय ह्रीं श्रीं नमः ॥

व्यापार वृद्धि यंत्र

७	१२	१	१४
२	१३	८	११
१६	३	१०	५
९	६	१५	४

दीपावली के शुभ मुहूर्त में अथवा रवि पुष्य योग में स्नानादि से निवृत्त हो स्वच्छ आसन पर बैठें। अष्टगंध की स्याही बनाकर मोरपंख की कलम से भोजपत्र पर इस यंत्र का निर्माण करें। यंत्र निर्माण आरम्भ करने से पूर्व अपने सम्मुख गुरु चित्र स्थापित कर लें तथा संक्षिप्त गुरु पूजन के पश्चात् गुरु मंत्र की एक माला जपें तत्पश्चात् यंत्र

का निर्माण करें। यंत्र निर्माण के दौरान ॐ श्री श्रियै नमः का जाप करते रहें तत्पश्चात् यंत्र को फ्रेम कराकर जहाँ व्यापार व्यवसाय होता है वहाँ स्थापित कर दें और नियमित रूप से प्रतिदिन संक्षिप्त पूजन करते रहें। भगवती महालक्ष्मी की कृपा से व्यापार में अप्रत्याशित वृद्धि होगी इसमें संदेह नहीं है।

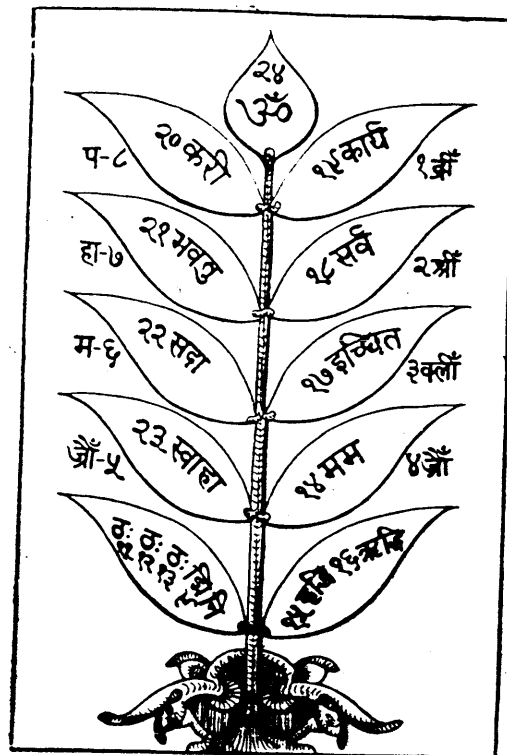
श्री महालक्ष्मी प्राप्ति यंत्र



यह अत्यंत दुर्लभ महालक्ष्मी यंत्र है। इस यंत्र को दीपावली के दिन रोहिणी नक्षत्र में अष्टगंध से भोजपत्र पर अंकित कर घड़े में रखकर यदि अन्न के भंडार में रख दिया जाय तो भगवती महालक्ष्मी की कृपा से अन्न का भण्डार कभी खाली नहीं होता और लक्ष्मी की प्राप्ति होती है। इस यंत्र को यदि चाँदी के कलश पर अंकित कर कलश को घर में स्थापित कर दिया जाय तो घर में सदा लक्ष्मी का वास रहता है। इस यंत्र को घड़े में अंकित कर घड़े का पानी रोगी को पिलाने से रोग नष्ट होता है। यंत्र का निर्माण करते समय ॐ श्री ह्रीं क्लीं महालक्ष्म्यै

नमः का निरन्तर जाप करते रहें।

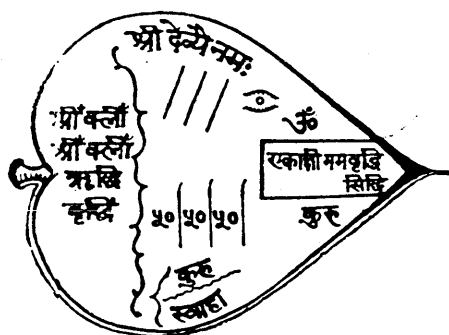
कल्पवृक्ष यंत्र



यह यंत्र अपने नाम के अनुरूप ही प्रभावकारी है इसे धारण करने अथवा घर में स्थापित करने से साधक कल्पवृक्ष के समान दीर्घायु होता है। वह सर्वत्र सम्मान पाता है। साधक को चाहिए कि वह रविपुष्य, गुरुपुष्य, रवि हस्त, रवि मूल अथवा दीपावली के दिन स्नानादि से निवृत्त हो स्वच्छ आसन पर बैठे अपने सम्मुख चौकी पर गुरु चित्र स्थापित करें और गुरु पूजन के पश्चात् गुरु मंत्र की माला जप करें तत्पश्चात् भोजपत्र पर अष्टगंध से इस यंत्र का अंकन करें। यंत्र निर्माण करते समय 'ॐ श्री श्री श्री ॐ' का जप करते रहें।

इस यंत्र को घर में स्थापित करने से मनुष्य सर्वत्र मान सम्मान व सत्कार पाता है तथा रोजगार व लक्ष्मी की प्राप्ति होती है। यंत्र के एक-एक अक्षर में चौबीस देवियों का निवास है।

एकाक्षी नारियल प्रयोग



यह यंत्र समस्त प्रकार की विपत्तियों का नाश करने वाला है। दीपावली के दिन स्नानादि से निवृत्त होकर गुरु पूजन के पश्चात् गुरु मंत्र की एक माला जप करें तत्पश्चात् एक नारियल पर सोने या चाँदी का वर्क चिपकायें और उस पर यह मंत्र अंकित करें-

मंत्र

“ ॐ श्री ‘क्लीं’ श्री देव्यै नमः कुरु कुरु ऋद्धि वृद्धि स्वाहा ”

उपरोक्त मंत्र अष्टगंध की स्याही से लिखें यंत्र निर्माण के पश्चात् चैतन्य कमल गट्टे की माला से उपरोक्त मंत्र का 12500 जप करें। इस तरह एकाक्षी नारियल सिद्ध हो जाता है फिर इसे तिजोरी या भंडार में रखने से द्रव्य, धन धान्य की प्राप्ति होती है तथा किसी प्रकार की विपत्ति नहीं आती है।

गद्दी के नीचे रखने का यंत्र

२४	३२	२	७
६	३	२६	२७
३१	२५	८	१
४	५	२६	३०

यह यंत्र व्यापारियों के लिए सर्वश्रेष्ठ है अपनी गद्दी जिस पर बैठकर वे व्यापार व्यवसाय करते हैं के नीचे इस यंत्र को गाड़ देने से व्यापार में अत्यधिक वृद्धि होती है।

इस यंत्र को दीपावली के दिन केसर या अष्टगंध से भोजपत्र पर अंकित करें। यंत्र अंकन करते समय गुरु मंत्र ॐ परम तत्वाय नारायणाय गुरुभ्यो नमः अथवा ॐ श्री श्रियै नमः मंत्र का जप करते रहें। यंत्र का निर्माण पूर्ण होने पर यंत्र को किसी मिट्टी के पात्र में रखकर उस पर सुपारी, हल्दी, रुपया, तथा धनिया आदि डालकर गद्दी के नीचे गाड़ दें और उस पर बैठें तो व्यापार अधिक चलता है

मुकदमे में सफलता प्राप्ति हेतु

५६२	५६६	२	७
६	३	५६६	५६५
५६८	५६२	८	१
४	५	५६४	५६७

वर्तमान युग में हर तीसरा व्यक्ति कोर्ट कचहरी आदि की झंझटों में उलझा हुआ है। सारा समय अदालतों के चक्कर लगाने में बीत जाता है ऐसे लोगों के लिए यह यंत्र अत्यन्त लाभप्रद है।

दीपावली के दिन जब आपका सूर्य स्वर चल रहा हो उस समय स्नानादि से निवृत्त होकर अष्टगंध से भोजपत्र पर यंत्र अंकित करें। यंत्र निर्माण के समय गुरु मंत्र “ ॐ परम तत्वाय नारायणाय गुरुभ्यो नमः ” का जाप करते रहें इस प्रकार निर्मित यंत्र को अपने जेब में रखकर जायें परिस्थितियाँ निश्चय ही आपके अनुकूल होंगी तथा मुकदमे में निश्चय ही सफलता मिलती है।

चौंसठ योगिनी महायंत्र

चौंसठ योगिनी महायंत्र

श्री च उ स ठ दि व्यापै न मः

१	२	३	४	५	६	७	८
विद्य योगिनी	महा योगिनी	शोरा	विकरी	दुर्जिता	प्रेतभक्षणी	काली	कामराजी
९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६
निमावरी	हुंकारी	यंत्रवाहिनी	कौमारी	यक्षी	भस्मणी	महाकाली	रक्तगो
१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४
यम दूती	लक्ष्मी	वीरभद्राक्षी	पुष्पाक्षी	कलिप्रिया	राक्षसी	चक्री	मोहिनी
२५	२६	२७	२८	२९	३०	३१	३२
कल्पवृक्ष	मंत्र योगिनी	कौमारिकी	चंडी	बागही	युंभारणी	दुर्दली	क्रोधी
३३	३४	३५	३६	३७	३८	३९	४०
वज्रणी	भैरवी	अम्बादेवी	कंदर्प	देवकुम्भी	मालिनी	सिंहरी	मयंक
४१	४२	४३	४४	४५	४६	४७	४८
विह पाद	घोररक्तगी	कंकली	भुवनेश्वरी	कुंडला	सालुकी	प्रेतकारी	नरभोजनी
४९	५०	५१	५२	५३	५४	५५	५६
करालनी	कौशिकी	उर्वेदेवी	भस्महारी	कलिनी	सिद्धकाली	विजयला	कायुष
५७	५८	५९	६०	६१	६२	६३	६४
व्याघ्री	यक्षणी	डाकिनी	प्रेतकी	जिह्वारि	सिद्धयोगिनी	कपल्ली	मित्रवर्धनी

देवी पंचांगुली महायंत्र

देवीपंचांगुली महायंत्र

१	२	३	४	५	६	७	८
१	२	३	४	५	६	७	८
९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६
१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४
२५	२६	२७	२८	२९	३०	३१	३२
३३	३४	३५	३६	३७	३८	३९	४०
४१	४२	४३	४४	४५	४६	४७	४८
४९	५०	५१	५२	५३	५४	५५	५६
५७	५८	५९	६०	६१	६२	६३	६४

यह वह दुर्लभ यंत्र है जिसमें 64 योगिनियों की शक्ति निहित है। इस यंत्र को विधिवत निर्माण कर चैतन्य कर लेने से सभी प्रकार की विपत्तियों का नाश होता है तथा इसे धारण करने से भूत, प्रेत, पिशाच, सङ्घिनी, डंकिनी आदि का दोष दूर होता है।

यह यंत्र दीपावली के दिन निर्मित किया जाय तो अति उत्तम है अन्यथा कृष्णपक्ष की अष्टमी रविवार या चतुर्दशी को सूर्य की ओर मुँह करके बैठें सामने चौकी पर गुरु चित्र स्थापित कर लें तथा गुरु मंत्र की माला जपने के बाद गुरु से आज्ञा लेकर अष्टगन्ध की स्याही से भोजपत्र पर यंत्र का अंकन आरम्भ करें। यंत्र निर्माण पूर्ण हो जाने पर यंत्र का विधिवत पूजन कर पूजा स्थल में रख दें तथा नियमित पूजन करते रहें।

इस दुर्लभ यंत्र को अष्टगन्ध से चाँदी की थाली पर अंकित कर नित्य एक बार उसी थाली में डालकर जल पिलाने से सात दिन के अन्दर शरीर की तमाम व्याधियाँ, ज्वर, शारीरिक दुर्बलता आदि दूर हो जाती हैं।

ज्योतिष के क्षेत्र में इस यंत्र का अति विशिष्ट स्थान है इसे सिद्ध कर लेने से हस्तरेखा व कुण्डली आदि देखने की सिद्धि प्राप्त हो जाती है। यह यंत्र ज्वर आदि तमाम विपत्तियों का नाश करने वाला, वशीकरण, आकर्षण, स्तम्भन, उच्चाटन, आदि में अचूक प्रभावकारी है।

यंत्र का निर्माण दीपावली के दिन या अन्य किसी शुभ तिथि को रवि पुष्य योग में करना चाहिए। अष्टगंध की स्याही से भोजपत्र पर इस यंत्र को निर्मित कर निम्न मंत्र से सिद्ध करके रख लें फिर प्रयोजन के अनुसार उसका उपयोग करें

मंत्र

“ॐ हां हीं हूं ह्रीं हः असि आउसा मम् सर्वोपद्रव शांति कुरु कुरु स्वाहा”

इस मंत्र को 108 बार जपने से मंत्र सिद्ध हो जाता है।

लक्ष्मी स्तम्भन के लिए रुद्राक्ष कल्प

मनुष्य चाहे वह किसी भी वर्ण का हो उसे भोग और मोक्ष की चाह अवश्य होती है और रुद्राक्ष धारण किये बगैर ऐश्वर्य की प्राप्ति नहीं हो सकती। मनुष्य पूर्व जन्म में एवं इस जन्म में जाने अनजाने में कुछ पाप कर्म कर डालता है जिसका परिणाम उसे रोग, शोक, मानसिक अशांति, गृह कलह, कोर्ट कचहरी आदि के रूप में भुगतना पड़ता है इन सभी का निदान है रुद्राक्ष। रुद्राक्ष के बारीक दानों की पूर्ण चैतन्य व प्राण प्रतिष्ठित माला किसी समर्थ गुरु से प्राप्त कर धारण करने मात्र से सभी पापों का शमन होता है तथा साधक इस लोक में सुख भोगता हुआ परम शिवधाम को प्राप्त होता है। यद्यपि रुद्राक्ष एक मुख से लेकर इक्कीस मुख तक के होते हैं और सब का अलग-अलग प्रभाव है पर चूंकि यह अंक सभी ऐश्वर्यों को प्रदान करने वाली भगवती महालक्ष्मी को समर्पित है अतः हम यहाँ पाँच व छः मुखी रुद्राक्ष से सम्बन्धित प्रयोग दे रहे हैं।

पंचमुखी रुद्राक्ष- पाँच देव (विष्णु, शिव, गणेश, सूर्य और देवी) का स्वरूप है अतः इसे धारण करने से पाँचों देवों की शक्तियाँ साधक को सहायता प्रदान करती हैं।

पंचमुखी रुद्राक्ष को धारण करने से पूर्व निम्न मंत्र से अभिमंत्रित कर लेना चाहिए।

मंत्र

“ॐ श्री साम्बसदाशिवाय नमः ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं पंच मुखाय भगवतेऽनुरूपाय सर्व युगेश्वराय त्रैलोक्य नाथाय सर्व काम फलं प्रदाय नमः”

पाँच मुख वाला रुद्राक्ष साक्षात् कालाग्रि रूप है। वह सब कुछ करने में समर्थ है। यह सभी प्रकार के कष्टों से मुक्ति देने वाला तथा सम्पूर्ण मनोवांछित फल प्रदान करने वाला है।

षट्मुखी रुद्राक्ष- साक्षात् कार्तिकेय है। इसे धारण करने से श्री एवं आरोग्य की प्राप्ति होती है। छः मुखी रुद्राक्ष को “ॐ ह्रीं नमः” मंत्र से चैतन्य किया जाता है। इसे यदि दाहिनी भुजा में धारण किया जाय तो धारण करने वाला मनुष्य सभी विद्याओं का स्वामी होता है और वह विघ्नों से मुक्त हो जाता है।

विशेष: ऊपर वर्णित सभी प्राण-प्रतिष्ठित एवं चैतन्य यंत्र साधना सिद्धि विज्ञान पत्रिका द्वारा प्रदान किये जा सकते हैं।

★



विजयलक्ष्मी साधना शिविर



उपरोक्त शिविर में विभिन्न दीक्षाएँ प्रदान की जायेंगी तथा साधकों की जिज्ञासाओं का समाधान किया जायेगा साथ ही महालक्ष्मी साधना सम्पन्न कराई जायेगी। साधना सिद्धि विज्ञान के अंतर्गत होने वाले सभी शिविर पूर्ण रूप से आडम्बरहीन वातावरण में आजीवन निःशुल्क सम्पन्न किये जायेंगे। शिविर में विशेष रूप से साधकों को महालक्ष्मी दीक्षा प्रदान की जायेगी।

विशेष : प्रत्येक माह की 21 तारीख को आयोजित होने वाले शिविरों में भगवान पारदेश्वर का रुद्राभिषेक वैदिक विधि-विधान से सम्पन्न किया जाता है। शिविर में उपस्थित सभी शिष्य/साधक रुद्राभिषेक में बिना किसी शुल्क के सम्मिलित हो सकते हैं।

विस्तृत जानकारी के लिए

दूरभाष क्रमांक. 576346, 583637, 554925

पर सम्पर्क किया जा सकता है।

: शिविर स्थल :

1,2 मिनाल व्यू-2 पंजाबी बाग भोपाल

गायत्री स्मृति

गायत्री स्मृति में कुल 25 श्लोक हैं पर इनमें सन्निहित शिक्षाएँ अमूल्य हैं। यह 25 शिक्षाएँ इतनी सारगर्भित और महत्वपूर्ण हैं कि इन्हें जीवन नीति बना लिया जाय तो मनुष्य की सभी लौकिक और परलौकिक समस्याएँ सुलझ सकती हैं। साथ ही राष्ट्रों, जातियों, वर्गों और व्यक्तियों के बीच में जो भारी मनोमालिन्य चल रहा है उसका निवारण होकर संसार में सतयुगी शान्ति की स्थापना हो सकती है।

गायत्री के एक-एक अक्षर पर गायत्री स्मृति के एक-एक श्लोक का निर्माण हुआ है। इसके अंतर्गत गायत्री साधकों के लिये गायत्री के संदेश-निर्देशों का उल्लेख है। गायत्री मंत्र के चौबीस अक्षरों में से प्रत्येक अक्षर एक विशेष निर्देश, विशेष शिक्षा देता है। वह विस्मरण में उपेक्षा के गर्त में न डाल दिया जाय, स्मृति में सदैव बना रहे तभी कल्याण पथ पर प्रगति सम्भव है। गायत्री स्मृति में साधकों के लिए उन्हीं महत्वपूर्ण सूत्रों को स्पष्ट किया गया है।



भूर्भुवः स्वस्त्रयो लोका व्याप्तमोम्ब्रह्म तेषुहि।

स एव तथ्यतो ज्ञानी यस्तद्वेत्ति विचक्षणः॥

भूःभुवः और **स्वः** ये तीन लोक हैं, उन तीनों लोकों में ॐ ब्रह्म व्याप्त है। जो बुद्धिमान उस ब्रह्म को जानता है, वही वास्तव में ज्ञानी है।

परमात्मा का वैदिक नाम 'ॐ' है। यह ॐ तीनों लोकों में व्याप्त है। **भूः** पृथ्वी, **भुवः** पाताल, **स्वः** स्वर्ग-ये तीनों ही लोक परमात्मा से परिपूर्ण हैं। **भूः** शरीर, **भुवः** संसार, **स्वः** आत्मा यह तीनों ही परमात्मा के क्रीड़ा-स्थल हैं। इन सभी स्थलों को, निखिल ब्रह्माण्ड को भगवान् का विराट् रूप समझकर उस आध्यात्मिक उच्च भूमिका को

प्राप्त करने का प्रयत्न करना चाहिये, जो गीता के 11 वें अध्याय में भगवान् ने अर्जुन को अपना विराट् रूप दिखाकर प्राप्त कराई थी। परमात्मा को सर्वत्र सर्वव्यापक, सर्वेश्वर, सर्वात्मा देखने वाला मनुष्य माया, मोह, ममता, संकीर्णता, अनुदारता, कुविचार एवं कुकर्मों की अग्नि में झुलसने से बच जाता है और हर घड़ी परमात्मा के दर्शन करने से

परमानन्द सुख में निमग्न रहता है।

'ॐ' भू भुवः स्वः का तत्त्वज्ञान समझ लेने वाला ब्रह्मज्ञानी एक प्रकार से जीवन-मुक्त ही हो जाता है।

तत्-तत्त्वज्ञास्तु विद्वांसो ब्राह्मणाः स्वतपोबलैः।
अंधकारमयपाकुयु-लोकेऽदज्ञानसम्भवम् ॥

तत्त्वदर्शी विद्वान् ब्राह्मण अपने एकत्रित तप के द्वारा संसार से अज्ञान द्वारा उत्पन्न अन्धकार को दूर करें।

ब्राह्मण वे हैं जो तत्त्व को, वास्तविकता को, परिणाम को

देखते हैं, जिन्होंने अपनी पढ़ाई को भाषा साहित्य, शिल्पकला, विज्ञान आदि की पेट भरू शिक्षा तक ही सीमित न रखकर जीवन का उद्देश्य, आनन्द और साफल्य प्राप्त करने की 'विद्या' भी सीखी है। शिक्षित तो गली-कूचे में मक्खी-मच्छरों की तरह भरे पड़े हैं, पर जो विद्वान् हैं वे ही ब्राह्मण हैं।

भगवान् ने जिन्हें तत्त्वदर्शी और विद्वान् बनने की सुविधा एवं प्रेरणा दी है, उन ब्राह्मणों को अपनी जिम्मेदारी अनुभव करनी चाहिये क्योंकि वे सबसे बड़े धनी हैं।

ब्राह्मणत्व विश्व का सबसे बड़ा धन है। रत्नों का भण्डार बढ़िया कीमती, मजबूत तिजोरी में रखा जाता है। जो शरीर

तपःपूत है, तपस्या की, संयम की, तितीक्षा की, त्याग की अग्नि में तपा-तपा कर जिस तिजोरी को भली प्रकार से मजबूती से गढ़ा गया है, उसी में ब्रह्मणत्व रहेगा और ठहरेगा। जो असंयमी, भोगी, स्वार्थी तपोविहीन हैं, वे शास्त्रों की तोतारटन्त भले ही करते हों पर उस बकवाद के अतिरिक्त अपने में ब्राह्मणत्व को भली प्रकार सुरक्षित एवं स्थिर रखने में समर्थ नहीं हो सकते। इसलिए ब्राह्मण को, सदज्ञान के धनी को, अपने को तपःपूत बनाना चाहिये। तप और ब्राह्मणत्व के सम्मिश्रण से ही सोना और सुगन्ध की उक्ति चरितार्थ होती है।

ब्राह्मण को भूसुर कहा जाता है। भूसुर का अर्थ है पृथ्वी का देवता। देवता वह है जो दे। ब्राह्मण संसार का सर्वश्रेष्ठ धन का, सदज्ञान का धनपति होता है। वह देखता है कि जो धन उसके पास अटूट भण्डारों में भरा हुआ है, उसी के अभाव के कारण सारी जनता दुःख पा रही है। अज्ञान से, अविद्या से बढ़कर दुःखों का कारण और कोई नहीं है। जैसे भूख से छटपटाते हुए, करुण क्रन्दन करते हुए मनुष्य को देखकर सहृदय धनी व्यक्ति उन्हें कुछ दान दिये बिना नहीं रह सकते, उसी प्रकार अविद्या के अन्धकार में भटकते हुए जन समूह को सच्चा ब्राह्मण, अपनी सदज्ञान सम्पदा से लाभ पहुँचाता है। यह कर्तव्य आवश्यक एवं अनिवार्य है। यह ब्राह्मण की स्वाभाविक जिम्मेदारी है।

गायत्री का प्रथम शब्द 'तत्' ब्राह्मणत्व की इस महान जिम्मेदारी की ओर संकेत करता है। जिसकी आत्मा, जितने अंशों में तत्त्वदर्शी, विद्वान और तपस्वी है, वह उतने ही अंश में ब्राह्मण है। यह ब्राह्मणत्व जिस वर्ण, कुल, वंश के मनुष्य में निवास करता है, उसी का यह कर्तव्य-धर्म है कि अज्ञान से उत्पन्न अंधकार को दूर करने के लिये जो कुछ कर सकता हो, अवश्य करता रहे।

स-सत्तावन्तस्तथा शूराः क्षत्रिया लोक रक्षकाः।

अन्यायाशक्तिसम्भूतान ध्वंसयेयुर्हि त्वापदः॥

सत्तावान वीर और संसार के रक्षक क्षत्रिय अन्याय और आशक्ति से उत्पन्न होने वाली आपत्तियों को नष्ट करें।

जन-बल, शरीर-बल बुद्धि-बल, सत्ता-शक्ति, पद, शासन, गौरव, बड़प्पन, संगठन, तेज, पुरुषार्थ, चातुर्य, साधन, साहस, शौर्य यह क्षत्रियत्व के लक्षण हैं जिसके पास इन वस्तुओं में से जितनी अधिक मात्रा है, उतने ही अंशों में उसका क्षत्रियत्व बढ़ा हुआ है।

देखा गया है कि यह क्षत्रियत्व जब अनधिकारियों के हाथ में पहुँच जाता है तो इससे उन्हें अहंकार और मद बढ़ जाता है। अहंकार को बड़प्पन समझकर वे उसकी रक्षा के लिये अनेक प्रकार के अनावश्यक खर्च और आडम्बर बढ़ाते हैं। उसकी पूर्ति के लिये अधिक धन की आवश्यकता पड़ती है, दूसरों को सताने में अपना पराक्रम समझते हैं। व्यसनों की अधिकता होती है और इन्द्रिय लिप्सा में प्रवृत्ति बढ़ती है। ऐसी दशा में वह क्षत्रियत्व उस व्यक्ति की आत्मा को ऊँचा उठाने और तेजस्वी महापुरुष बनाने की अपेक्षा अहंकारी, दम्भी, अत्याचारी, व्यसनी और कदाचारी बना देता है। ऐसे दुरुपयोग से बचना ही उचित है।

गायत्री का 'स' अक्षर कहता है कि हे सत्तावानों! तुम्हें सत्ता इसलिये दी गयी है कि शोषितों और निर्बलों को हाथ पकड़ कर ऊँचा उठाओ, उनकी सहायता करो और जो दुष्ट उन्हें निर्बल समझकर सताने का प्रयत्न करते हैं उन्हें अपनी शक्ति से परास्त करो। बुराइयों से लड़ने और अच्छाइयों को बढ़ाने के लिये ही ईश्वर शक्ति देता है। उसका उपयोग इसी दिशा में होना चाहिये।

वि-वित्तशक्त्या तु कर्तव्या उचिताभावपूर्तयः।

न तु शक्त्या तथा कार्यं दपौद्धत्यप्रदर्शनम्॥

धन की शक्ति द्वारा तो उचित अभावों की पूर्ति करनी चाहिये। उस शक्ति द्वारा घमण्ड और उद्वण्डता का प्रदर्शन नहीं करना चाहिये।

विद्या और सत्ता की भाँति धन भी एक महत्वपूर्ण शक्ति है। इसका उपार्जन इसलिये आवश्यक है कि अपने तथा दूसरों के उचित अभावों की पूर्ति की जा सके। शरीर, मन, बुद्धि तथा आत्मा के विकास के लिये सांसारिक उत्तरदायित्वों की पूर्ति के लिये धन का उपयोग होना चाहिये और इसलिए उसे कमाया जाना चाहिये। पर कई व्यक्ति प्रचुर मात्रा में धन जमा करने में अपनी प्रतिष्ठा अनुभव करते हैं। अधिक धन का स्वामी होना उनकी दृष्टि में कोई बहुत बड़ी बात होती है। अधिक कीमती सामान का उपयोग करना, अधिक अपव्यय, अधिक भोग, अधिक विलास उन्हें जीवन की सफलता के चिन्ह मालुम पड़ते हैं। इसलिए जैसे भी बने धन कमाने की उनकी तृष्णा प्रबल रहती है। इसके लिये धर्म-अधर्म का, उचित-अनुचित का विचार करना भी छोड़ देते हैं। धन में उनकी इतनी तन्मयता होती है कि स्वास्थ्य मनोरंजन, स्वाध्याय, आत्मोन्नति,

लोक-सेवा, ईश्वराराधन आदि सभी उपयोगी दिशाओं से वे मुँह मोड़ लेते हैं। धनपतियों को एक प्रकार का नशा सा चढ़ा रहता है, जिससे उनकी सदबुद्धि, दूरदर्शिता और सत्-असत् परीक्षण प्रज्ञा कुण्ठित हो जाती है। धनोपार्जन की यह दशा निन्दनीय है।

धन कमाना आवश्यक है इसलिए कि उससे हमारी वास्तविक आवश्यकताएँ उचित सीमा तक पूरी हो सकें। इसी दृष्टि से प्रयत्न और परिश्रमपूर्वक लोग धन कमावें, गायत्री का 'वि' अक्षर वित्त धन के सम्बन्ध में यही संकेत करता है।

तु-तुषाराणां प्रपातेऽपि यत्नो धर्मो तु चात्मनः।

महिमा च प्रतिष्ठा च प्रोक्ता पारिश्रमस्य हि॥

तुषारापात में भी प्रयत्न करना आत्मा का धर्म है। श्रम की महिमा और प्रतिष्ठा अपार है-ऐसा कहा गया है।

मनुष्य जीवन में विपत्तियाँ, कठिनाइयाँ, विपरीत परिस्थितियाँ, हानियाँ और कष्ट की घड़ियाँ भी आती ही रहती हैं। जैसे रात और दिन समय के दो पहलू हैं वैसे ही सम्पदा और विपदा, सुख और दुःख भी जीवन-रथ के दो पहिये हैं। दोनों के लिये ही मनुष्य को धैर्यपूर्वक तैयार रहना चाहिये। न विपत्ति में छाती पीटे और न सम्पत्ति में इतरा कर तिरछा चले।

कठिन समय में मनुष्य के चार साथी हैं- विवेक, धैर्य, साहस, प्रयत्न। इन चारों को मजबूती से पकड़े रहने पर बुरे दिन धीरे-धीरे निकल जाते हैं और जाते समय अनेक अनुभवों, गुणों, योग्यताओं तथा शक्तियों को उपहार में दे जाते हैं। चाकू पत्थर पर घिसे जाने पर तेज होता है, सोना अग्नि में पड़कर खरा सिद्ध होता है, मनुष्य कठिनाइयों में पड़कर इतनी शिक्षा प्राप्त करता है जितनी कि दस गुरु मिलकर भी नहीं सिखा सकते हैं। इसलिए कष्ट से डरना नहीं चाहिये वरन् उपर्युक्त चार साधनों द्वारा संघर्ष करके उसे परास्त करना चाहिये।

परिश्रम, प्रयत्न, कर्तव्य ये मनुष्य के गौरव और वैभव को बढ़ाने वाले हैं। आलसी, भाग्यवादी, कर्महीन, संघर्ष से डरने वाले, अव्यवहारिक मनुष्य प्रायः सदा ही असफल होते रहते हैं। जो कठिनाइयों पर विजयी होना और आनन्दमय जीवन का रसास्वादन करना चाहते हैं उन्हें गायत्री मंत्र का 'तु' अक्षर उपदेश करता है कि प्रयत्न करो, परिश्रम करो, कर्तव्य पथ पर बहादुरी से डटे रहो, क्योंकि पुरुषार्थी की महिमा अपार है। पुरुष कहलाने का अधिकारी

वही है जो पुरुषार्थी है।

**वि-श्रेष्ठ नारीं बिना कोऽन्यो निर्माता मनुसन्ततेः।
महत्वं रचनाशक्तेः स्वस्याः नार्या हि ज्ञायताम्॥**

नारी के बिना मनुष्य को बनाने वाला दूसरा और कौन हैं अर्थात् मनुष्य की निर्माती नारी को अपनी रचना शक्ति का महत्व समझना चाहिये।

जन-समाज दो भागों में बँटा हुआ है। नर, नारी। नर की उन्नति, सुविधा एवं सुरक्षा के लिये काफी प्रयत्न किया जाता है परन्तु नारी हर क्षेत्र में पिछड़ी हुई है। फलस्वरूप हमारा आधा संसार, आधा परिवार, आधा जीवन पिछड़ा हुआ रह जाता है जिस रथ का एक पहिया बड़ा और एक छोटा हो, जिस हल में एक बैल बड़ा और दूसरा बहुत छोटा जुता हो, उसके द्वारा संतोषजनक कार्य नहीं हो सकता। हमारा देश, हमारा समाज, समुदाय तब तक सच्चे अर्थों में विकसित नहीं कहा जा सकता जब तक कि नारी को भी नर के समान ही अपनी क्रियाशीलता एवं प्रतिभा प्रकट करने का अवसर प्राप्त न हो।

नारी से ही नर उत्पन्न होता है। बालक की आदि गुरु उसकी माता ही होती है। पिता के वीर्य की एक बूँद निमित्त ही होती है। बाकी बालक के सब अंग प्रत्यंग माता के रक्त से ही बनते हैं। उस रक्त में जैसी स्थिरता, प्रतिभा, विचारधारा होगी उसी के अनुसार बालक का शरीर, मस्तिष्क और स्वभाव बनेगा। नारियाँ यदि अस्वस्थ, अशिक्षित, अविकसित, कूप-मण्डूक और पिछड़ी हुई रहेंगी तो उनके द्वारा उत्पन्न हुए बालक भी इन्हीं दोषों से युक्त होंगे। ऊसर खेत में अच्छी फसल पैदा नहीं हो सकती। अच्छे फलों का बाग लगाना है तो अच्छी भूमि की आवश्यकता होगी।

गायत्री का 'व' अक्षर कहता है कि यदि मनुष्य जाति अपनी उन्नति चाहती है तो उसे पहले नारी को शारीरिक, बौद्धिक, सामाजिक, आर्थिक क्षेत्रों में प्रतिभावान् सुविकसित बनाना चाहिये। तभी नर समुदाय में प्रबलता, सूक्ष्मता, समृद्धि, सदबुद्धि, सद्गुण और महानता के संस्कारों का विकास हो सकता है। नारी को पिछड़ी हुई रखना अपने पैरों में आप कुल्हाड़ी मारना है।

**रे-रेवेव निर्मला नारी पूजनीया सता सदा।
यतो हि सर्व लोकेऽस्मिन् साक्षात्क्षमीर्मता बुधैः॥**

सज्जन पुरुष को हमेशा नर्मदा नदी के समान निर्मल नारी की पूजा करनी चाहिये क्योंकि विद्वानों ने उसी को इस संसार में साक्षात् लक्ष्मी माना है।

जैसे नर्मदा नदी का जल सदा निर्मल रहता है, उसी प्रकार ईश्वर ने नारी को निर्मल अन्तःकरण दिया है। परिस्थिति दोष के कारण अथवा दुष्ट संगति से कभी-कभी उसमें विकार पैदा हो जाते हैं, पर इन कारणों को बदल दिया जाए तो नारी हृदय पुनः अपनी शाश्वत निर्मलता पर लौट आता है। स्फुटिक मणि को रंगीन मकान में रखा जाय या उसके निकट कोई रंगीन पदार्थ रख दिया जाय तो वह मणि भी रंगीन छाया के कारण रंगीन दिखाई पड़ने लगती है परन्तु पीछे जब उन कारणों को हटा दिया जाय तो वह शुद्ध, निर्मल, शुभ्र मणि ही दिखाई पड़ती है। इसी प्रकार नारी जब बुरी परिस्थितियों में फँसी हो तब बुरी दिखाई देती है। उस परिस्थिति का अन्त होते ही वह निर्मल एवं निर्दोष हो जाती है।

वैधव्य, किसी की मृत्यु, घाटा आदि दुर्घटनायें घटित होने पर उसे नव आगन्तुक वधू के भाग्य का दोष बताना नितान्त अनुचित है। ऐसी घटनायें होतव्यता के अनुसार होती हैं। नारी तो लक्ष्मी का अवतार होने से सदा ही कल्याणकारिणी और मंगलमयी है। गायत्री का अक्षर 'रे' नारी सम्मान की अभिवृद्धि चाहता है ताकि लोगों को मंगलमय वरदान प्राप्त हो।

**पय-न्यसन्ते ये नराः पादान् प्रकृत्याज्ञानुसारतः।
स्वस्थाः सन्तस्तु ते नूनं रोगमुक्ता भवन्ति हि॥**

जो मनुष्य प्रकृति की आज्ञानुसार पैरों को रखते हैं अर्थात् प्रकृति की आज्ञानुसार चलते हैं वे मनुष्य स्वस्थ होते हुए निश्चय ही रोगों से मुक्त हो जाते हैं।

स्वास्थ्य को ठीक रखने और बढ़ाने का राजमार्ग प्रकृति के आदेशानुसार चलना, प्राकृतिक आहार-विहार अपनाना, प्राकृतिक जीवन व्यतीत करना है। अप्राकृतिक, अस्वाभाविक, बनावटी, आडम्बर और विलासिता से भरा हुआ जीवन बिताने से लोग बीमार बनते हैं और अल्पायु में ही काल के ग्रास बन जाते हैं।

भूख लगने पर खूब चबाकर प्रसन्न चित्त से, थोड़ा पेट खाली रखकर भोजन करना।

फल, शाक, दूध, दही, छिलके समेत अन्न और दालें

जैसे ताजे सात्विक आहार लेना।

नशीली चीजें, मिर्च-मसाले, चाट, पकवान, मिठाइयाँ, माँस आदि अभक्ष्यों से बचना।

सामर्थ्य के अनुकूल श्रम एवं व्यायाम करना।

शरीर, वस्त्र, मकान और प्रयोजनीय सामान की भली प्रकार सफाई रखना।

रात को जल्दी सोना और प्रातः जल्दी उठना।

मनोरंजन, देशाटन, निर्दोष विनोद के लिये पर्याप्त अवसर प्राप्त करते रहना।

कामुकता, चटोरेपन, अन्याय, बेईमानी, ईर्ष्या, द्वेष, चिन्ता, क्रोध, पाप आदि के कुविचारों से मन को हटाकर सदा प्रसन्नता और सात्विकता के सद्विचारों में रमण करना। स्वच्छ जलवायु का सेवन।

उपवास, ऐनेमा, फलाहार, जल, मिट्टी आदि प्राकृतिक उपचारों से रोग-मुक्ति का उपाय करना। ये दस नियम ऐसे हैं जिन्हें अपनाकर प्राकृतिक जीवन बिताने से खोये हुए स्वास्थ्य को पुनः प्राप्त करना और प्राप्त स्वास्थ्य को सुरक्षित एवं उन्नत बनाना बिल्कुल सरल है। गायत्री का 'ण्य' अक्षर यही उपदेश करता है।

भ-भवोद्विग्रमना नैव हृद्वेगं परित्यज।

कुरु सर्वव्यवस्थासु शांतं संतुलितं मनः॥

मानसिक उत्तेजना को छोड़ दो। सभी आवश्यकताओं में मन को शान्त और संतुलित रखो।

शरीर में उष्णता की मात्रा अधिक बढ़ जाना 'ज्वर' कहलाता है और ज्वर अनेक दुष्परिणामों को पैदा कर सकता है वैसे ही उद्वेग, आवेश, उत्तेजना, मद, आतुरता आदि लक्षण मानसिक ज्वर के हैं। आवेश का अन्धड़ तूफान जिस समय मन में आता है उस समय ज्ञान, विवेक सब का लोप हो जाता है और उस सन्निपात से ग्रस्त व्यक्ति अंड-बंड बातें बकता है, न करने लायक अस्त-व्यस्त क्रियायें करता है वह स्थिति मानव जीवन में सर्वथा अवांछनीय है।

विपत्ति पड़ने पर लोग चिन्ता, शोक, निराशा, भय, घबराहट, क्रोध, कायरता आदि विषादात्मक आवेश से ग्रस्त हो जाते हैं और सम्पत्ति बढ़ने पर अहंकार, मद, मत्सर, अतिहर्ष, अमर्यादा, नास्तिकता, अतिभोग, ईर्ष्या द्वेष आदि विध्वंसक उत्तेजना में फँस जाते हैं। कई बार लोभ और भोग का आकर्षण उन्हें इतना लुभा लेता है कि वे आँखें रहते हुए भी अन्धे हो जाते हैं। इन तीनों स्थितियों में मनुष्य

का होशहवास दुरुस्त नहीं रहता। देखने में वह स्वस्थ और भला-चंगा दीखता है, पर वस्तुतः उसकी आन्तरिक स्थिति पागलों, बालकों रोगियों तथा उन्मत्तों जैसी हो जाती है। ऐसी स्थिति मनुष्य के लिये विपत्ति, त्रास, अनिष्ट और अनर्थ के अतिरिक्त और कुछ उत्पन्न नहीं कर सकती। इसलिये गायत्री के 'भू' शब्द का संदेश है कि इन आवेशों और उत्तेजनाओं से बचो। दूरदर्शिता, विवेक, शान्ति और स्थिरता से काम लो। बदली की छाया की तरह रोज घटित होती रहने वाली रंग-बिरंगी घटनाओं से अपनी आन्तरिक शान्ति को नष्ट न होने दो। मस्तिष्क को स्वस्थ रखो, चित्त को शान्त रहने दो, आवेश की उत्तेजना से नहीं विवेक और दूरदर्शिता के आधार पर अपनी विचारधारा और कार्य प्रणाली को चलाओ।

**गो-गोप्याः स्वीया मनोवृत्तिर्नासहिष्णुर्नरो भवेत्।
स्थितिमन्यस्य च वीक्ष्य तदनुरूपतां चरेत्॥**

अपने मनोभावों को नहीं छिपाना चाहिये। मनुष्य को असहिष्णु नहीं होना चाहिये। दूसरे की स्थिति को देखकर उसके अनुसार आचरण करे।

अपने मनोभाव और मनोवृत्ति को छिपाना, छल, कपट और पाप है। जैसे भीतर है वैसे ही बाहर प्रकट कर दिया जाय तो वह पाप निवृत्ति का सबसे बड़ा राजमार्ग है। कोई व्यक्ति यदि अधिक रहस्यवादी हो, अधिक अपराधी कार्य करता हो तो भी वह अपने कुछ ऐसे आत्मीय-विश्वासीजनों से सम्पर्क अवश्य रखना चाहता है, जिनके आगे अपने सब रहस्य प्रकट करके मन हल्का कर लिया करे। ऐसे आत्मीय मित्र और गुरुजन हर मनुष्य को नियुक्त कर लेने चाहिये।

प्रत्येक मनुष्य के दृष्टिकोण, विचार, अनुभव, अभ्यास, ज्ञान, स्वार्थ, रुचि एवं संस्कार विभिन्न होते हैं। इसलिये सबका सोचना एक प्रकार का नहीं हो सकता। इस तथ्य को समझते हुए दूसरों के प्रति सहिष्णुता होनी चाहिये। अपने से किसी भी अंश में मतभेद रखने वाले को मूर्ख, अज्ञानी, दुराचारी या विरोधी मान लेना उचित नहीं। ऐसी असहिष्णुता झगड़ों की जड़ है। एक-दूसरे के दृष्टिकोण के अन्तर को समझते हुए यथासम्भव समझौते का मार्ग निकालना चाहिये। फिर भी जो मतभेद रह जाय उसे पीछे धीरे-धीरे सुलझाते रहने के लिये छोड़ देना चाहिए।

संसार में सभी प्रकृति के मनुष्य हैं। मूर्ख, विद्वान, रोगी, स्वस्थ, पापी, पुण्यात्मा, पाखण्डी, कायर, वीर, कटुवादी, नम्र, चोर, ईमानदार, निन्दनीय, आदरास्पद, स्वधर्मी,

विधर्मी, दया-पात्र, दण्डनीय, शुष्क, सरस, भोगी, त्यागी आदि परस्पर विरोधी स्थितियों के मनुष्य भरे पड़े हैं। उनकी स्थिति को देखकर तदनुसार उनसे भाषण, व्यवहार, सहयोग करे। उनकी स्थिति के आधार पर ही उनके लिये शक्य सलाह दे। सबसे एक समान व्यवहार नहीं हो सकता और न सब एक मार्ग पर चल सकते हैं। यह सब बातें 'गो' अक्षर हमें सिखाता है।

दे-देयानि स्ववशे पुंसा स्वेन्द्रियाण्यखिलानि वै।

असंयतानि खादन्तीन्द्रियाण्येतानि स्वामिनम्॥

मनुष्य को अपनी सम्पूर्ण इन्द्रियाँ अपने वश में करनी चाहिये। ये असंयत इन्द्रियाँ स्वामी को खाती हैं।

इन्द्रियाँ आत्मा के औजार हैं, घोड़े हैं, सेवक हैं। परमात्मा ने इन्हें इसलिये प्रदान किया है कि इनकी सहायता से आत्मा की आवश्यकता पूरी हों और सुख मिले। सभी इन्द्रियाँ बड़ी उपयोगी हैं।

सभी का काम जीव को उत्कर्ष एवं आनन्द प्रदान करना है। यदि उसका सदुपयोग हो तो क्षण-क्षण पर मानव-जीवन का मधुर रस चखता हुआ प्राणी अपने भाग्य को सराहता रहेगा।

किसी इन्द्रिय का भोग पाप नहीं है। सच तो यह है कि अन्तःकरण को विविध क्षुधाओं को, तृष्णाओं को तृप्त करने का इन्द्रियाँ एक माध्यम हैं। जैसे पेट की भूख-प्यास को न बुझाने से शरीर का सन्तुलन बिगड़ जाता है, वैसे ही सूक्ष्म शरीर की क्षुधायें उचित रीति से तृप्त न की जाती रहें तो आन्तरिक क्षेत्र का सन्तुलन बिगड़ जाता है और अनेक मानसिक रोग उठ खड़े होते हैं।

इन्द्रिय भोगों की जगह-जगह निन्दा की जाती है और वासनाओं को दमन करने का उपदेश दिया जाता है। उसका वास्तविक तात्पर्य यह है कि अनियन्त्रित इन्द्रियाँ स्वाभाविक एवं आवश्यक मर्यादा का उल्लंघन करके इतनी स्वेच्छाचारी एवं चटोरी हो जाती हैं कि वे स्वास्थ्य और धर्म के लिये संकट उत्पन्न करके भी मनमानी करती हैं। आजकल अधिकांश मनुष्य इसी प्रकार के इन्द्रिय-गुलाम हैं। अपनी वासना पर काबू नहीं रख सकते। बेकाबू हुई वासना अपने स्वामी को खा जाती है।

गायत्री का 'दे' अक्षर आत्म-नियन्त्रण का उपदेश देता है।

व-वस नित्यं पवित्रः सन् बाह्याऽभ्यन्तरतस्तथा ।

यतः पवित्रतायां हि राजतेऽतिप्रसन्नता ॥

मनुष्य को बाहर और भीतर सब तरह से पवित्र होकर रहना चाहिये, क्योंकि पवित्रता में ही प्रसन्नता रहती है।

मलीनता अन्ध तामसिकता की प्रतीक है। आलस्य और दारिद्र्य, पाप और पतन जहाँ रहते हैं, वहाँ मलीनता एवं गन्दगी का निवास होता है। जो इस प्रकृति के हैं उनके वस्त्र, घर, सामान, शरीर, मन सब में गन्दगी और अस्तव्यस्तता भरी रहती है। इसके विपरीत जहाँ चैतन्यता, जागरुकता, सुरुचि, सात्विकता होगी वहाँ सबसे पहले स्वच्छता की ओर ध्यान जायेगा। सफाई, सादगी, सजावट, व्यवस्था का नाम ही पवित्रता है।

मलीनता से घृणा होनी चाहिये पर उसे हटाने या उठाने में रुचि होनी चाहिए। जो गन्दगी को छूने या उसे उठाने, हटाने से हिचकिचाते हैं वे सफाई नहीं रख सकते। मन में, शरीर में, वस्त्रों में, समाज में हर घड़ी गन्दगी पैदा होती है निरन्तर टूट-फूट का जीर्णोद्धार न किया जाय, तो गन्दगी बढ़ती जायेगी और सफाई चाहने की इच्छा केवल एक कल्पना मात्र बनी रह जायेगी।

गायत्री का 'व' अक्षर स्वच्छता का सन्देश देता है। स्वच्छ शरीर, स्वच्छ वस्त्र, स्वच्छ निवास, स्वच्छ सामान, स्वच्छ जीविका, स्वच्छ विचार, स्वच्छ व्यवहार जिसमें इस प्रकार की स्वच्छतायें निवास करती हैं, वह पवित्रात्मा मनुष्य निष्पाप जीवन व्यतीत करता हुआ पुण्य गति को प्राप्त करता है।

स्व-स्यन्दनं परमार्थस्य परार्थो हि बुधैर्मतः ।
योऽन्यान् सुखयते विद्वान् तस्य दुःखं विनश्यति ॥

दूसरों का प्रयोजन सिद्ध करना परमार्थ का रथ है, ऐसा बुद्धिमानों ने कहा है। जो विचारवान दूसरे लोगों को सुख देता है, उसका दुःख नष्ट हो जाता है।

लोक व्यवहार के तीन मार्ग हैं-

अर्थ- जिसमें दोनों पक्ष समान रूप से आदान-प्रदान करते हैं।

स्वार्थ- दूसरों को हानि पहुँचा कर अपना लाभ करना।

परमार्थ- अपनी हानि करके भी दूसरों को लाभ पहुँचाना।

स्वार्थ में चोरी ठगी, अपहरण, शोषण बेईमानी आदि

आते हैं। परमार्थ में दान, सेवा, सहायता, शिक्षा आदि कार्यों को कहा जाता है।

अर्थ आजीविका। हमारा नित्यकर्म है। उसके बिना जीवन यात्रा भी नहीं चल सकती। आहार, निद्रा, भोजन, मल-त्याग आदि के समान स्वाभाविक होने के कारण उसका विधि निषिद्ध कुछ नहीं है। वह तो हर एक को करना ही होता है। स्वार्थ त्याज्य है, निंदनीय है, पाप मूलक है, उससे यथासंभव बचते ही रहना चाहिये। परमार्थ धर्म कार्य है, इससे अपने को त्याग का, उदारता का अभ्यास बढ़ता है, आत्म-कल्याण का धर्म-मार्ग प्रशस्त होता है तथा उससे दूसरों का लाभ होने से वह प्रसन्न होकर बदले में प्रत्युपकार करते हैं, प्रशंसा और आदर देते हैं और कृतज्ञ रहते हैं।

गायत्री का 'स्य' शब्द प्रेरणा देता है कि हर मनुष्य का कर्तव्य है कि अर्थ उपार्जन करता हुआ स्वार्थ से बचे और परमार्थ के लिये यथा सम्भव प्रयत्नशील रहे। अपना पेट तो पशु-पक्षी भी भर लेते हैं, प्रशंसनीय वह है जिसके द्वारा दूसरे भी लाभ उठावें।

धी-धीरस्तुष्टो भजेन्नैव होकस्यां समुन्नतौ ।

क्रियतामुन्नतिस्तेन सर्वास्वाशासु जीवने ॥

धीर पुरुष को एक ही प्रकार की उन्नति से सन्तुष्ट न रहना चाहिये। मनुष्य को जीवन की सभी दिशाओं में उन्नति करनी चाहिये।

जैसे मनुष्य के कई अंग हैं और उन सभी का पुष्ट होना आवश्यक होता है, वैसे ही जीवन की सभी दिशाओं में उन्नति करनी चाहिये।

जैसे मनुष्य के कई अंग हैं और उन सभी का पुष्ट होना आवश्यक होता है, वैसे ही जीवन की अनेक दिशाएँ हैं और उन सभी का विकास होना सर्वतोन्मुखी उन्नति का चिह्न है। यदि पेट बहुत बढ़ जाय और हाथ-पाँव पतले हो जायें तो इस विषमता से प्रसन्नता न होकर चिन्ता ही बढ़ेगी। इसी प्रकार यदि कोई आदमी केवल धनी, केवल विद्वान या केवल पहलवान बन जाय तो वह उन्नति पर्याप्त न होगी। वह पहलवान किस काम को जो दाने-दाने को मोहताज हो। वह विद्वान किस काम का जो रोगों से ग्रस्त हो। वह धनी किस काम का जिसके पास न विद्या है न तन्दुरुस्ती।

केवल एक ही दिशा में उन्नति के लिये अत्यधिक प्रयत्न करना और अन्य दिशाओं की उपेक्षा करना, उनकी ओर से उदासीन रहना उचित नहीं। जैसे पूर्व, पश्चिम, उत्तर,

दक्षिण, ईशान वायव्य, नैऋत्य, आग्नेय आठ दिशाएँ हैं वैसे ही जीवन की भी आठ दिशाएँ हैं, आठ बल हैं।

स्वास्थ्य बल, विद्या बल, धन बल, मित्र बल, प्रतिष्ठा बल, चातुर्य बल, साहस बल, आत्म बल। इन आठों का यथोचित मात्रा में संचय होना चाहिये। जैसे किसान खेत को सब ओर से सुरक्षित रखता है, जैसे चतुर सेनापति युद्ध क्षेत्र के सब मोर्चों की रक्षा करता है, वैसे ही जीवन के ये आठों मोर्चे सावधानी के साथ ठीक रखे जाने चाहिये। जिधर भी भूल रह जायेगी उधर से ही शत्रु का आक्रमण होने और परास्त होने का भय रहेगा।

गायत्री का 'धी' शब्द हमें सजग करता है कि आठों बल बढ़ाओ, आठों मोर्चों पर सजग रहो, अष्टभुजी दुर्गा की उपासना करो, आठों दिशाओं की रखवाली करो तभी सर्वांगीण उन्नति हो सकेगी।

म-महेश्वरस्य विज्ञाय नियमात्र्याय संयुतान्।

तस्य सत्तां च स्वीकुर्वन् कर्मणा तमुपासयेत्॥

“परमात्मा के न्यायपूर्ण नियमों को समझकर और उसकी सत्ता को स्वीकार करते हुए कम से कम उस परमात्मा की उपासना करे।”

परमात्मा के नियम न्यायपूर्ण हैं। सृष्टि में उसके प्रधान कार्य भी दो ही हैं-

(१) संसार को नियमबद्ध रखना।

(२) कर्मों का न्यायानुकूल फल देना।

इन दोनों ईश्वरीय प्रधान कार्यों को समझकर जो अपने को नियमानुसार बनाता है, प्रकृति के कठोर नियमों को ध्यान में रखता है, सामाजिक, राजकीय, धार्मिक, लोक-हितकारी कानूनों, कायदों को मानता है वह एक प्रकार से ईश्वर को प्रसन्न करने का प्रयत्न करता है। इसी प्रकार जो यह समझता है कि न्याय की अदालत में खड़ा होना ही पड़ेगा और बुरे-भले कर्मों के अनुसार दुःख-सुख की प्राप्ति अनिवार्यतः होगी वह ईश्वर के समीप पहुँचता है। काम करने पर ही उसकी उजरत मिलती है। जो पसीना बहायेगा, परिश्रम करेगा, पुरुषार्थ, उद्योग और चतुरता का परिचय देगा, उसे उसके प्रयत्न के अनुसार साधन सामग्री जुटाने में सफलता मिलेगी।

परमात्मा की पूजा उपासना की जितनी साधनाएँ हैं, जितने कर्मकाण्ड हैं, उनका तात्पर्य यही है कि साधक

परमात्मा के अस्तित्व पर उसकी सर्वज्ञता और सर्वव्यापकता पर विश्वास करे। यह विश्वास जितना दृढ़ होगा, उतना ही उसे परमात्मा का नियम और न्याय स्मरण रहेगा। इन दोनों की कठोरता और निश्चिन्तता पर विश्वास होना, सन्मार्ग पर चलने की प्रेरणा का हेतु है। जो समझता है कि शीघ्र या देर-सबेर में तुरन्त या विलम्ब से कर्म का फल मिले बिना नहीं रह सकता, वह आलसी या कुकर्म नहीं हो सकता। जो आलस्य और कुकर्म से जितना बचता है वह ईश्वर का उतना ही बड़ा भक्त है। गायत्री का 'म' अक्षर उपासना के रहस्य का स्पष्टीकरण करता है। बताता है कि ईश्वरीय नियम और न्याय का ध्यान रखते हुए हम सत्पथ पर चलें।

**हि-हितं मत्त्वा ज्ञानेन्द्रं स्वातंत्र्येण विचारयेत्।
नान्थानुसरणं कुर्यात् कदाचित् कोऽपि कस्यचित्॥**

“हितकारी ज्ञान केन्द्र को समणकर स्वतंत्रतापूर्वक चार करे। कभी भी कोई किसी का अन्थानुसरण न करे।”

देश, काल, पात्र, अधिकार और परिस्थिति के अनुसार मानव जाति के हित और सुविधा के लिये विविध प्रकार के नियम, धर्मोपदेश, कानून और प्रथाओं का निर्माण एवं परिचालन होता है। परिस्थितियों के परिवर्तन के साथ-साथ इन प्रथाओं एवं मान्यताओं का परिवर्तन होता रहता है।

समाज के सुसंचालन के लिये प्रथाएँ हैं। मनुष्य जाति की सुव्यवस्था के लिये उन्हें बनाया गया है। ऐसा नहीं कि उन प्रथाओं को अपरिवर्तनशील समझकर समाज और जाति के लिये उन्हें अमिट लकीर मान लिया जाय। संसार में आदि काल से बराबर परिवर्तन होता आ रहा है। कई रिवाजें आज के लिये अनुपयुक्त हैं, तो ऐसा नहीं कि परम्परा मोह के कारण उनका अन्थानुकरण किया ही जाय।

गायत्री का 'हि' अक्षर कहता है कि समाज के हित का ध्यान रखते हुए देश, काल और विवेक के अनुसार प्रथाओं को, परम्पराओं को बदला जा सकता है। आज हिन्दू समाज में ऐसी अगणित प्रथाएँ प्रचलित हैं, जिन्हें बदलने की अत्यधिक आवश्यकता है।

**धि-धिया मृत्युं स्मरन् मर्म जानीयाज्जीवनस्य च।
तदा लक्ष्यं समालक्ष्य पादौ सन्ततमाक्षिपेत्॥**

“बुद्धि से मृत्यु का ध्यान रखे और जीवन के मर्म को समझे, तब अपने लक्ष्य की ओर निरन्तर अपने पैरों को चलावे अर्थात् निरन्तर अपने लक्ष्य की ओर बढ़े।”

जीवन और मृत्यु के रहस्य को विवेक पूर्वक गम्भीरता से समझना आवश्यक है। मृत्यु कोई डरने की बात नहीं, पर उसे ध्यान में रखना आवश्यक है। न जाने किस समय मृत्यु सामने आ खड़ी हो और कूच की तैयारी करनी पड़े। इसलिये जो समय हाथ में है, उसे अच्छे से अच्छे उपयोग में लाना चाहिये। धन, यौवन आदि अस्थिर हैं। छोटे से रोग या हानि से इनका विनाश हो सकता है, इसलिये इनका अहंकार न करके, दुरुपयोग न करके, ऐसे कार्यों में लगाना चाहिये, जिससे भावी जीवन में सुख-शांति की अभिवृद्धि हो।

जीवन एक अभिनय है और मृत्यु उसका पटाक्षेप है। इस अभिनय को हमें इस प्रकार करना चाहिये जिससे दूसरों की प्रसन्नता बढ़े और अपनी प्रशंसा हो। नाटक या खेल के समय सुखपूर्ण और दुःख भरे अनेक अवसर आते हैं, पर अभिनयकर्ता समझता है कि यह केवल खेल मात्र हो रहा है, इसमें वास्तविकता कुछ नहीं है। उस खेल के समय होने वाले दुःख के अभिनय में न दुःखी होता है न सुख के अभिनय में सुखी वरन् अपना कौशल प्रदर्शित करने में, अपनी नाट्य सफलता में प्रसन्नता अनुभव करता है। जीवन नाटक का भी अभिनय इसी प्रकार होना चाहिये। हर समय मनुष्य पर आये दिन आने वाली सम्पदा-विपदा का कुछ महत्व नहीं, उनकी ओर विशेष ध्यान न देकर अपना कर्म-कौशल दिखाने के लिये हमें प्रयत्नशील रहना चाहिये। मृत्यु जीवन का अन्तिम अतिथि है। उसके स्वागत के लिये सदा तैयार रहना चाहिये। अपनी कार्य प्रणाली ऐसी रखनी चाहिये कि किसी भी समय मृत्यु सामने आ खड़ी हो तो तैयारी में कोई कमी अनुभव न करनी पड़े।

गायत्री का 'धि' अक्षर जीवन और मृत्यु के सत्य को समझाता है। जीवन को इस प्रकार बनाओ जिससे मृत्यु के समय पश्चाताप न हो। जो वर्तमान की अपेक्षा भविष्य को उत्तम बनाने के लिये प्रयत्नशील हैं, वे जीवन और मृत्यु का रहस्य भली प्रकार जानते हैं।

**यो-यो धर्मो जगदाधारः स्वाचरणे तमानय।
मा विडम्ब्य तं सोऽस्ति ह्येको मार्गे सहायकः॥**

“जो धर्म संसार का आधार है, उस धर्म को अपने आचरण में लाओ। उसकी विडम्बना मत करो। वह तुम्हारे मार्ग में एक ही अद्वितीय सहायक है”

धर्म संसार का आधार है। उसके ऊपर विश्व का समस्त भार रखा हुआ है। यदि धर्माचरण उठ जाय और सब लोग

पूर्ण रूप से अधर्मी बन जायें तो एक क्षण के लिये भी कोई प्राणी चैन से न बैठ सकेगा। सबको अपने प्राण बचाने और दूसरे का अपहरण करने की चक्की के दुहरे पायों के बीच पिसना पड़ेगा। आज अनेक व्यक्ति लुकछिप कर अधर्माचरण करते हैं पर उन्हें भी यह साहस नहीं होता कि प्रत्यक्षतः अपने को अधर्मी घोषित करें या अधर्म को उचित ठहराने की वकालत करें। बुराइयाँ भी भलाई की आड़ लेकर की जाती हैं। इससे प्रकट है कि धर्म ऐसी मजबूत चीज है कि उसी का आश्रय लेकर, आडम्बर ओढ़कर दुष्ट दुराचारी भी अपना बेड़ा पार लगाते हैं। ऐसे मजबूत आधार को ही हमें अपना अवलम्बन बनाना चाहिए।

कई आदमी धर्म को कर्मकाण्ड का, पूजा-पाठ का, तीर्थ-व्रत, दान आदि का विषय मानते हैं और कुछ समय इनमें लगाकर शेष समय को नैतिक-अनैतिक कैसे ही कार्य करने के लिये स्वतंत्र समझते हैं। यह भ्रान्त धारणा है। धर्म, पूजा-पाठ तक ही सीमित रहने वाली वस्तु नहीं है वरन् उसका उपयोग तो अपनी प्रत्येक विचारधारा और क्रियाप्रणाली में पूरी तरह होना चाहिये।

गायत्री का 'यो' अक्षर बताता है कि धर्म की विडम्बना मत करो, उसे आडम्बर का आचरण मत बनाओ, वरन् उसे अपने जीवन में घुला डालो। जो कुछ सोचो, जो कुछ करो, वह धर्मानुकूल होना चाहिये। शास्त्र की उक्ति है कि-“रक्षा किया हुआ धर्म अपनी रक्षा करता है और धर्म को जो मारता है, धर्म उसे मार डालता है।” इस तथ्य को ध्यान में रखकर हमें धर्म को ही अपनी जीवन नीति बनाना चाहिये।

**यो-योजन व्यसनेभ्यः स्यात्तानि पुंसस्तु शत्रवः।
मिलित्वैतानि सर्वाणि समये घ्नन्ति मानवम्॥**

“व्यसनों से योजन भर दूर रहे अर्थात् व्यसनों से बचें रहे, क्योंकि वे मनुष्य के शत्रु हैं। ये सब मिलकर समय पर मनुष्य को मार देते हैं।”

व्यसन मनुष्य के प्राणघातक शत्रु हैं। मादक पदार्थ व्यसनों में प्रधान हैं। तम्बाकू, गांजा, चरस, भांग, अफीम, शराब आदि नशीली चीजें एक से एक बढ़कर हानिकारक हैं। इनसे क्षणिक उत्तेजना आती है। जिन लोगों की जीवन-शक्ति क्षीण एवं दुर्बल हो जाती है वे अपने को शिथिल तथा

अशक्त अनुभव करते हैं। उनका उपचार, आचार, विहार, प्रकृति में अनुकूल परिवर्तन करके शक्ति संचय वृत्ति द्वारा वर्धन होना चाहिये। परन्तु भ्रान्त मनुष्य दूसरा मार्ग अपनाते हैं। वे थके घोड़े को चाबुक मार-मारकर दौड़ाने का उपक्रम करके चाबुक को शक्ति का केन्द्र मानने की भूल करते हैं। नशीली चीजें मस्तिष्क को मूर्च्छित कर देती हैं, जिससे मूर्च्छाकाल में शिथिलतावश पीड़ा नहीं होती। दूसरी ओर वे चाबुक मार-मार कर उत्तेजित करने की क्रिया करती हैं। नशीली चीजों का सेवन करने वाला ऐसा समझता है कि वे मुझे बल दे रही हैं, पर वस्तुतः उनसे बल नहीं मिलता बल्कि बची हुई शक्तियाँ भड़ककर बहुत शीघ्र समाप्त हो जाती हैं और मादक द्रव्य सेवन करने वाला व्यक्ति दिन-दिन क्षीण होते-होते अकाल मृत्यु के मुख में चला जाता है। व्यसन मित्र के वेष में शरीर में घुसते हैं और शत्रु बनकर उसे मार डालते हैं।

नशीले पदार्थों के अतिरिक्त और भी ऐसी आदतें हैं जो शरीर और मन को हानि पहुँचाती हैं पर आकर्षण और आदत के कारण मनुष्य उनका गुलाम बन जाता है। वे उससे छोड़े नहीं छूटते। सिनेमा, नाच रंग, व्यभिचार, मुर्गा, तीतर, बटेर लड़ाना आदि कितनी ही हानिकारक और निरर्थक आदतों के शिकार बनकर लोग अपना धन, समय और स्वास्थ्य निरर्थक बरबाद करते हैं।

गायत्री का 'यो' अक्षर व्यसनों को दूर करने का आदेश करता है, क्योंकि ये शरीर और मन दोनों का नाश करने वाले हैं। व्यसनी मनुष्य की वृत्तियाँ नीच मार्ग की ओर ही चलती हैं।

नः नः श्रृण्वेकामिमां वार्ता "जागृतस्त्वं सदा भव"। सप्रमादं नरं नूनं ह्याक्रामन्ति विपक्षिणः॥

"हमारी यह एक बात सुनो कि तुम हमेशा जागृत रहो, क्योंकि निश्चय ही सोते हुए मनुष्य पर दुश्मन आक्रमण करते हैं।"

असावधानी, आलस्य, बेखबरी, अदूरदर्शिता ऐसी भूलें हैं जिन्हें अनेक आपत्तियों की जननी कह सकते हैं। बेखबर आदमी पर चारों ओर से हमले होते हैं। असावधानी में ऐसा आकर्षण है, जिससे खिंच-खिंच कर अनेक प्रकार की हानियाँ, विपत्तियाँ एकत्रित हो जाती हैं। असावधान आलसी पुरुष एक प्रकार का अर्धमृत है। मरी हुई लाश

को पड़ी देखकर जैसे चील, कौए, कुत्ते, शृगाल, गिद्ध दूर-दूर से दौड़कर वहाँ जमा हो जाते हैं, वैसे ही असावधान पुरुष के ऊपर आक्रमण करने वाले तत्व कहीं न कहीं से आकर अपनी घात लगाते हैं।

जो स्वास्थ्य की रक्षा के लिये जागरूक नहीं है, उसे देर-सबेर में बीमारियाँ आ दबोचेंगी। जो नित्य आते रहने वाले उतार-चढ़ावों से बेखबर है वह किसी दिन दिवालिया बनकर रहेगा। जो काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर सरीखे मानसिक शत्रुओं की गतिविधियों की ओर से आँखें बन्द किये रहता है, वह कुविचारों और कुकर्मों के गर्त में गिरे बिना न रह सकेगा। जो दुनियाँ के छल, फरेब, झूठ, ठगी, लूट, अन्याय, स्वार्थपरता, शैतानी आदि की ओर से सावधान नहीं रहता, उसे उल्लू बनाने वाले, ठगने वाले, सताने वाले अनेकों पैदा हो जाते हैं। जो जागरूक नहीं, जो अपनी ओर से सुरक्षा के लिये प्रयत्नशील नहीं रहता, उसे दुनियाँ के शैतानी तत्व बुरी तरह नोंच खाते हैं।

इसलिये गायत्री का 'न' अक्षर हमें सावधान करता है कि होशियार रहो, सावधान रहो, सावधान रहो, जागते रहो कि तुम्हें शत्रुओं के आक्रमण का शिकार न बनना पड़े।

प्र-प्रकृत्या तु भवोदारो नानुदारः कदाचन।

चिन्तयोदारदृष्ट्यैव तेन चित्तं विशुद्ध्यति॥

"स्वभाव से ही उदार होओ, कभी भी अनुदार मत बनो, उदार दृष्टि से ही विचार करो-ऐसा करने से चित्त शुद्ध हो जाता है।"

अपनी बात, अपनी रीति, अपनी रिवाज, अपनी मान्यता, अपनी अक्ल को ही सही मानना और दूसरे सब लोगों को मूर्ख, भ्रान्त, बेईमान ठहराना अनुदारता का लक्षण है। अपने लाभ के लिये चाहे सारी दुनियाँ का विनाश होता हो तो हुआ करे, ऐसी नीति अनुदार लोगों की होती है। वे सिर्फ अपनी सुविधा और इच्छा को सर्वोपरि रखते हैं। दूसरों की कठिनाई और असुविधा का उन्हें जरा भी ध्यान नहीं होता।

ऐसी अनुदारता पशुता की सूचक है। जिद्दी, दुराग्रही, घमण्डी, खुदगर्ज, संकीर्ण भाव वाले मनुष्यों की वाणी बड़ी कर्कश होती है। गायत्री का संदेश सुनने और समझने वालों को ऐसा अनुदार कदापि न होना चाहिए। दूसरों के विचारों, तर्कों, स्वार्थों और परिस्थितियों को समझकर मतभेद होते

हुए भी उनका आदर करना सीखना चाहिए। दूसरे लोग अपनी सुविधा और स्थिति के अनुसार किसी बात को सोचते हैं। जब वह अपनी बात को ठीक समझने के लिए दृढ़ हैं तो दूसरे की वैसी दृढ़ता के लिए उसे क्यों कोसना चाहिए।

गायत्री का 'प्र' अक्षर कहता है कि दूसरों की भूलों और कमियों के प्रति हमें कठोर नहीं, उदार होना चाहिये। उनकी उचित इच्छाओं, आवश्यकताओं और माँगों के प्रति हमारी सहानुभूति होनी चाहिये।

चो-चोदयत्येव सत्संगो धियमस्य फलं महत्।

स्वमतो सज्जनैर्विद्वान् कुर्यात् पर्यावृतं सदा॥

“सत्संग बुद्धि को प्रेरणा देता है। इस सत्संग का फल महान है। इसलिये विद्वान अपने आपको हमेशा सत्पुरुषों से घिरा हुआ रख, अर्थात् हमेशा सज्जनों का संग करे।”

मनुष्य का मस्तिष्क निर्मल जल के समान है। वातावरण, संस्कार और अनुकरण के साधन उसे विभिन्न दिशाओं में मोड़ते हैं। पानी का बहाव नाव को बहा ले जाता है। हवा जिधर को चलती है, पतंगे उधर ही उड़ते हैं। मनुष्य जिस वातावरण में रहता है, उधर ही उसकी मनोवृत्तियाँ चलने लगती हैं और धीरे-धीरे वह उसी ढाँचे में ढलने लगता है। जैसे दो बालकों में से जन्म से ही एक को कसाई के यहाँ रखा जाय तथा एक को ब्राह्मण के यहाँ, तो बड़े होने पर उन दोनों के गुण, कर्म, स्वभाव में जमीन-आसमान का अन्तर होगा, यह संगति का ही प्रभाव है।

जो लोग अच्छाई की दिशा में अपनी उन्नति करना चाहते हैं, उन्हें चाहिये कि अपने को अच्छे वातावरण में रखें, अच्छे लोगों को अपना मित्र बनायें और उन्हीं से अपना व्यापार, व्यवहार तथा सम्पर्क रखें। सम्भव हो तो परामर्श उपदेश और पथ-प्रदर्शन भी उन्हीं से प्राप्त करें। इस प्रकार की स्थिति में रहने से प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से वैसा ही प्रभाव अपने ऊपर पड़ता है और उसी दिशा में चलने के लिये प्रेरणा मिलती है। कुसंग में रहने से, घुरे वातावरण के सम्पर्क में आने से मलिनता बढ़ती है। इसलिये उधर से मुँह मोड़े रहना ही उचित है।

यथासाध्य अच्छे व्यक्तियों का सम्पर्क बढ़ाने के अतिरिक्त अच्छी पुस्तकों का स्वाध्याय भी उपयोगी है। सत्संग न हो सके तो पुस्तकें पढ़कर सत्संग का लाभ उठाया जा सकता है। एकान्त में स्वयं भी अच्छे विचारों का चिन्तन

और मनन करने तथा अपने मस्तिष्क को उसी दिशा में लगाये रहने से भी आत्म-सत्संग होता है। यह सभी सत्संग आत्मोन्नति के लिये आवश्यक हैं। गायत्री का 'यो' अक्षर सत्संग का महत्व बताता है और उसके लिये प्रयत्नशील रहने का उपदेश करता है।

द-दर्शनं ह्यात्मनं कृत्वा जानीयादात्म-गौरवम्।

ज्ञात्वा तु तत्तदात्मानं पूर्णोन्नतिपथं नयेत्॥

“आत्मा का दर्शन करके आत्मा के गौरव को पहिचानो। उसको जानकर, तब आत्मा को उन्नति के मार्ग पर ले चलो।”

मनुष्य शरीर नाशवान् और तुच्छ है। उसके हानि-लाभ भी तुच्छ और महत्वहीन हैं, पर उसकी आत्मा ईश्वर का अंश होने के कारण महान है। उसकी महिमा और महत्ता इतनी बड़ी है कि किसी से भी उसकी तुलना नहीं हो सकती। मनुष्य का गौरव उसके शरीर के कारण नहीं, वरन् आत्मा की विशेषताओं के कारण है, जिसकी आत्मा जितनी अधिक बलवान होती है, वह उतना ही बड़ा महापुरुष कहा जाता है।

जिन कार्यों से हमारी प्रतिष्ठा, साख, सम्मान, आदर, श्रद्धा बढ़ती है, वे ही आत्म-गौरव को बढ़ाने वाले हैं। प्रतिष्ठा सबसे बड़ी सम्पत्ति है, फिर आत्मा की प्रतिष्ठा का मूल्यांकन तो हो ही नहीं सकता। इतनी बड़ी अमानत को हमें सब प्रकार सुरक्षित रखना चाहिये। लोग सम्पत्ति द्वारा बनी हुई प्रतिष्ठा को गिरते या नष्ट होते देखकर तिलमिला जाते हैं और उस दुःख से इतने दुःखी हो जाते हैं कि कोई-कोई तो आत्महत्या भी कर डालते हैं। फिर आत्म-प्रतिष्ठा, आत्म-गौरव तथा आत्म-सम्मान तो और भी ऊँची चीज हैं, उन्हें तो किसी भी मूल्य पर न गिरने देना चाहिये।

जिससे आत्म-गौरव घटता हो, आत्म-ग्लानि होती हो और आत्म-हनन करना पड़ता हो, ऐसे धन, सुख, भोग, पद को लेने की अपेक्षा भूखा और दीन रहना कहीं अच्छा है। गायत्री का 'द' अक्षर आत्म-सम्मान की रक्षा और आत्म-हनन की निवृत्ति के लिये हमें बड़े से बड़ा त्याग करने में भी न झिझकने के लिये तैयार रहने को कहता है।

या-यायात्स्वोत्तरदायित्व निर्वहन् जीवने पिता।

कुपितापि तथा पापः कुपुत्रोऽपि यथा मतः॥

“पिता अपने उत्तरदायित्व को निभाता हुआ जीवन में

चले, क्योंकि कुपिता भी उसी प्रकार पापी होता है, जैसे कुपुत्र होता है।”

जिनके हाथ प्रबन्ध, व्यवस्था शासन, स्वामित्व, बल होते हैं, वे प्रायः उसका यथोचित उपयोग नहीं करते। ढील, शिथिलता, लापरवाही भी वैसी ही बुराई है, जैसी कि स्वार्थपरता एवं अनुचित लाभ उठाने की नीति। इसका परिणाम बुरा ही होता है। अक्सर पुत्र, शिष्य, स्त्री, प्रजाजन, सेवक आदि के बिगड़ जाने, बुरे होने, अवज्ञा करने, अनुशासनहीन होने के उदाहरण बहुत सुने जाते हैं। इन बुराइयों का बहुत कुछ उत्तरदायित्व पिता, गुरु, पति, शासक, स्वामी आदि पर भी है, क्योंकि प्रबन्ध शक्ति उनके हाथ में होती है। बुद्धिमत्ता और अनुभव अधिक होने के कारण उत्तरदायित्व उन्हीं का अधिक होता है। व्यवस्था में शिथिलता डालने, बुरे मार्ग पर चलने का अवसर देने, नियंत्रण में सावधानी न रखने से भी ऐसी घटनायें प्रायः घटित होती हैं।

प्रत्येक सम्बन्ध में दो पक्ष होते हैं। दोनों पक्षों को यथोचित कर्तव्य पालन करने से ही वे सम्बन्ध स्थिर और सुदृढ़ रहते हैं, तो भी समझदार पक्ष का उत्तरदायित्व विशेष है। उसे अपने पक्ष पर अधिक मजबूती से खड़ा रहना चाहिये और छोटे पक्ष के साथ उदार बर्ताव करना चाहिये। लोग अपने-अपने अधिकार पर अधिक बल देते हैं और अपने कर्तव्य से जी चुराते हैं, यही कलह का कारण है। यदि दोनों ओर से अपने-अपने अधिकारों की अपेक्षा न की जाय तो संघर्ष का अवसर ही न आवे और सम्बन्ध बड़ी मधुरता से निभते चले जायें।

“या” अक्षर पिता-पुत्र में, बड़े-छोटे में, अच्छे सम्बन्ध रखने का नुस्खा यह बताता है कि दोनों ओर से अधिकार की माँग मन्द रखी जाय और कर्तव्यों का दृढ़ता से पालन हो। बड़ा पक्ष छोटे पक्ष को संभालने के लिये अधिक सावधानी और उदारता बरते।

त-तथाचरेत्सदान्येभ्यो वाञ्छन्त्यन्येयथा नरः।

नम्राः शिष्टः कृतज्ञश्च सत्यसाहाय्यवान् भवेत्॥

“मनुष्य दूसरे के साथ उस प्रकार का आचरण करे,

जैसा वह दूसरे के द्वारा चाहता है और उसे नम्र, शिष्ट, कृतज्ञ और सच्चाई के साथ सहयोग की भावना वाला होना चाहिये।”

दूसरों के साथ कैसा व्यवहार करना चाहिये, उसकी कसौटी यह है कि “हम दूसरों से जैसा व्यवहार अपने लिये चाहते हैं, वैसा ही आचरण स्वयं भी दूसरों के साथ करें।” दुनियाँ कुँ की आवाज की तरह है। कुँ में मुँह करके जैसी वाणी हम बोलेंगे, बदले में वैसी ही प्रतिध्वनि दूसरी ओर से आवेगी।

हर एक मनुष्य चाहता है कि दूसरे आदमी उससे नम्र बोलें, सभ्य व्यवहार करें, उसकी कोई चीज न चुरावें, विपत्ति पड़ने पर सहायता करें, ईमानदारी बरतें, कोई भूल हो जाय तो उसे सहन कर लें, मार्ग में कोई रोड़ा न अटकावें, उसकी बहिन-बेटियों पर कुदृष्टि न डालें तथा समय-समय पर उदारता एवं सहयोग की भावना का परिचय दें। जब हम दूसरों से ऐसा व्यवहार चाहते हैं तो हमारे लिये भी यह उचित है कि वैसा ही व्यवहार दूसरों से करें। कारण यह है कि सदा ही क्रिया से प्रतिक्रिया उत्पन्न होती है। यदि हम बुराई करेंगे तो दूसरों के मन पर उसकी छाप पड़ेगी, प्रतिक्रिया होगी और उसमें से वैसे ही विचार तथा व्यवहार उत्पन्न होंगे। यदि यह बुरी श्रृंखला चल पड़ी तो अपने लिये तथा अन्यो के लिये इसका बुरा प्रतिफल होगा, अगर यह श्रृंखला अच्छी तरह चली तो उससे पारस्परिक सहयोग, प्रेम, सद्भावों की प्रतिक्रिया होगी, जो अपने लिये ही नहीं, अन्यो के लिये भी हितकर होती है। यदि लोग अपने विचार और कार्यों में वैसे ही तत्व भर लें, जैसे कि दूसरों में होने की आशा करते हैं तो संसार में सुख-शान्ति की स्थापना हो सकती है।

गायत्री का अन्तिम अक्षर “त्” शास्त्रकारों की “आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्” उक्ति का उद्घोष करता है। इसे क्रियात्मक रूप में लाना, गायत्री शिक्षा की ओर एक महत्वपूर्ण कदम बढ़ाना है।

तांत्रिक क्रियाओं, अभीष्ट सिद्धि, वशीकरण तथा औषधीय प्रयोजनों में प्रयुक्त होने वाली परम चैतन्य शिव क्षेत्र पचमढ़ी के पवित्र वनों से प्राप्त दुर्लभ जड़ी-

हाथाजोड़ी

मूल्य 201 रुपये

यह जड़ी अगणित विशेषताओं से युक्त होने के कारण आध्यात्मिक व गृहस्थ साधकों के लिये अत्यधिक उपयोगी है। इस जड़ी में साक्षात् चामुण्डा देवी का वास है। यदि यह जड़ी आपके पास है तो कोई भी प्राणी आपके खिलाफ जा ही नहीं सकता साथ ही भूत-प्रेतादि से भी रक्षा होती है।

विशेष : इस दुर्लभ जड़ी को प्राप्त कर किसी भी शुभ मुहूर्त में पूजा स्थल में स्थापित कर नियमित रूप से धूप-दीप आदि दिखाते रहें जब आवश्यकता हो अपने जेब में रखकर जायें।

सम्पर्क

साधना सिद्धि विज्ञान

फ्लेट नं. 1,2 मिनाल व्यू-॥ पंजाबी बाग भोपाल

दूरभाष : (0755) 576346, 591143

यथ, समृद्धि तथा महालक्ष्मी की निकटता
प्राप्त करने का अमोघ साधन
पावन रामेश्वरम् के तट पर प्राप्त दुर्लभ

दक्षिणवर्ती शंख

मूल्य 501 रुपये

सम्पर्क

साधना सिद्धि विज्ञान

फ्लेट नं. 1,2 मिनाल व्यू-॥ पंजाबी बाग भोपाल

दूरभाष : (0755) 576346, 591143

महालक्ष्मी की कृपा प्राप्ति का अमोघ साधन दुर्लभ महालक्ष्मी स्तोत्र

यह वह दुर्लभ स्तोत्र है जो परमपिता ब्रह्मा द्वारा देवराज इन्द्र को प्रदान किया गया था। इस स्तोत्र के द्वारा सभी देवगण भगवती महालक्ष्मी का स्तवन करते हैं। एक पौराणिक प्रसंग के अनुसार एक बार जब इन्द्रादिक समस्त देवगण असुरों से भयभीत हो त्रिदेवों की शरण में पहुँचे तब भगवान श्री हरि विष्णु ने परमपिता ब्रह्मा द्वारा बताई गयी विधि से भगवती महालक्ष्मी का पूजन करने का परामर्श देवताओं को दिया उक्त पूजन विधि पत्रिका में प्रथमतः वर्णित है। श्रीमद्देवी भागवत के अनुसार जब इन्द्रादि देवों के पूजन से प्रसन्न हो भगवती महालक्ष्मी प्रकट हुयी तब देवराज इन्द्र सहित समस्त देवगणों ने ब्रह्माजी की कृपा से प्राप्त सम्पूर्ण अभीष्ट प्रदान करने वाले स्तोत्र राज द्वारा भगवती महालक्ष्मी की स्तुति की वही दुर्लभ एवं समस्त मनोकामनाओं की पूर्ति करने वाला स्तोत्र हम अक्षरशः प्रस्तुत कर रहे हैं-

नमः कमलवासिन्यै नारायण्यै नमो नमः।

कृष्ण प्रियायै सततं महालक्ष्म्यै नमो नमः॥

भगवती कमलवासिनी को नमस्कार है,

देवी नारायणी को बार-बार नमस्कार है। कृष्णप्रिया भगवती महालक्ष्मी को निरन्तरः अनेकशः नमस्कार है।

पद्म पत्रेक्षणायै च पद्मास्यायै नमो नमः।

पद्मासनायै पद्मिन्यै वैष्णव्यै च नमो नमः॥

कमल के पत्र के समान नेत्रवाली कमलमुखी भगवती महालक्ष्मी को नमस्कार है, पद्मासना, पद्मिनी एवं वैष्णवी नाम से शोभा पाने वाली भगवती महालक्ष्मी को बार-बार

नमस्कार है।

सर्वसम्पत्स्वरूपिण्यै सर्वाराध्यै नमो नमः।

हरिभक्तिप्रदाय्यै च हर्षदाय्यै नमो नमः॥

सर्वसम्पत्स्वरूपिणी सर्वाराध्या देवी को नमस्कार है। भगवान श्री हरि में भक्ति उत्पन्न करने वाली तथा हर्ष प्रदान करने में परम कुशल देवी को बार-बार नमस्कार है।

कृष्णवक्षःस्थितायै च कृष्णोशायै नमो नमः।

चन्द्रशोभास्वरूपायै रत्नपद्मे च शोभने॥

रत्न पद्मे! शोभने! तुम भगवान श्री कृष्ण के वक्ष स्थल पर विराजमान होकर कार्य की व्यवस्था करती हो तुम्हारा स्वरूप चन्द्रमा के समान सुन्दर है तुम्हें मैं बार-बार प्रणाम करता हूँ।

सम्पत्प्राप्तिायै देव्यै, महादेव्यै नमो नमः।

नमो बुद्धिस्वरूपायै वृद्धिदायै नमो नमः॥

सम्पूर्ण सम्पत्ति की अधिष्ठात्री महादेवी के लिए बार-बार नमस्कार है बुद्धिस्वरूपा एवं वृद्धिप्रदा भगवती के लिए अनेकशः प्रणाम है।

बैकुण्ठे या महालक्ष्मीर्या लक्ष्मीः क्षीरसागरे।

स्वर्ग लक्ष्मीरिन्द्रगेहे राजलक्ष्मीर्नृपालये॥

देवी! तुम बैकुण्ठ में महालक्ष्मी, क्षीर समुद्र के यहां लक्ष्मी, राजाओं के भवन में राज्यलक्ष्मी व इन्द्र के स्वर्ग में स्वर्ग लक्ष्मी हो।

गृह लक्ष्मीश्च गृहिणां गेहे च गृहदेवता।

सुरभिः सागरे जाता दक्षिणा यज्ञकामिनी॥

हे देवी! तुम गृहस्थों के घर में गृह लक्ष्मी एवं गृह देवता, सागर के यहां सुरभि और यज्ञ के पास दक्षिणा के रूप में विराजमान रहती हो।

अदिति देवमाता त्वं कमला कमलालया।

स्वाहा त्वं च हविर्दाने कव्यदाने स्वधाहास्मृता ॥

तुम देवताओं की माता अदिति हो तुम्हें कमला और कमलालया कहा जाता है हव्य प्रदान करते समय 'स्वाहा' और कव्य प्रदान करने के अवसर पर 'स्वधा' का जो उच्चारण होता है, वह तुम्हारा नाम है।

त्वं हि विष्णुस्वरूपा च सर्वाधारा वसुन्धरा।

शद्धसत्त्वस्वरूपा त्वं नारायणपरायणा ॥

सब को धारण करने वाली विष्णुमयी पृथ्वी तुम्हीं हो भगवान् नारायण की उपासना में सदा तत्पर रहने वाली देवी तुम्हारा सत्त्वमय विग्रह परम शुद्ध है।

क्रोध हिंसावर्जिता च वरदा शारदा शुभा।

परमार्थप्रदा त्वं च हरिदास्यप्रदा परा ॥

तुम्हारे में क्रोध और हिंसा को किन्विन्मात्र भी स्थान नहीं है। तुम्हें वरदा, शारदा, शुभा, परमार्थदा एवं हरिदास्यप्रदा कहते हैं।

यया विना जगत्सर्वं भस्मी भूतमसारकम्।

जीवन्मृतं च विश्वं च शश्वत सर्वं यया विना ॥

तुम्हारी अनुपस्थिति में सारा जगत निस्तत्त्व होकर भस्मीभूत हो जाता है तुम्हारे न रहते हुये अखिल विश्व की प्राण रहते हुये भी मृतक जैसी स्थिति हो जाती है।

सर्वेषां च परा माता सर्वबान्धवरूपिणी।

धर्मार्थकाममोक्षाणां त्वं च कारणरूपिणी ॥

तुम सम्पूर्ण प्राणियों की श्रेष्ठ माता हो सबके बान्धव रूप में तुम्हारा ही पधारना हुआ है। तुम्हारी ही कृपा से धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष प्राप्त होते हैं।

यथा माता स्तनन्धानां शिशूनां शैशवे सदा।

तथा त्वं सर्वदा माता सर्वेषां सर्वरूपतः ॥

जिस प्रकार बचपन में दुध मुँह बच्चे के लिए माता है वैसे ही तुम अखिल जगत की जननी होकर सबकी सभी अभिलाषायें पूर्ण किया करती हो।

मातृहीनः स्तनन्धस्तु सच जीवति दैवतः।

त्वया हीनो जनः कोऽपि न जीवत्येव निश्चितम् ॥

स्तनपायी बालक माता के न रहने पर भाग्यवश जी भी सकता है परन्तु तुम्हारे बिना कोई भी नहीं जी सकता यह निश्चित है।

सुप्रसन्नस्वरूपा त्वं मां प्रसन्ना भवाम्बिके।

वैरिग्रस्तं च विषयं देहि मह्य सनातनि ॥

अम्बिके! सदा प्रसन्न रहना तुम्हारा स्वाभाविक गुण है अतः तुम मुझ पर प्रसन्न हो जाओ। मेरा राज्य शत्रुओं के हाँथों में चला गया है तुम्हारी कृपा से वह मुझे पुनः प्राप्त हो जाय।

अहं यावत् त्वया हीनो बन्धुहीनश्च भिक्षुकः।

सर्वं सम्पदविहीनश्च तावदेव हरि प्रिये ॥

हरि प्रिये! जब तक तुम्हारा दर्शन नहीं मिला था तभी तक मैं बन्धुहीन, भिक्षुक तथा सभी सम्पत्तियों से शून्य था।

ज्ञानं देहि च धर्मं च सर्वसौभाग्यमीप्सितम्।

प्रभावं च प्रतापं च सर्वाधिकार मेव च।

जयं पराक्रमं युद्धे परमैश्वर्यमेव च ॥

हे मातेश्वरी! अब तो मुझे ज्ञान, धर्म, अखिल अभीष्ट, सौभाग्य, प्रभाव, प्रताप, सर्वाधिकार, परम ऐश्वर्य, पराक्रम तथा युद्ध में विजय प्राप्त होना ही चाहिये।

कहने का आशय यह है कि जिस स्तुति से इन्द्रादि देवताओं ने भगवती महालक्ष्मी की स्तुति कर सब कुछ प्राप्त किया वह स्तुति निश्चय ही आप सभी साधकों को अभीष्ट सिद्धि, अपार वैभव, सुख व ऐश्वर्य प्रदान करेगी ऐसा जानकर पूर्ण भक्ति भाव से भगवती महालक्ष्मी की आराधना करो। भगवती आपकी मनोकामना पूर्ण करें। यही प्रार्थना है।

लक्ष्मी जी की कृपा व धन धान्य वर्धक चमत्कारिक वनस्पति श्री फल

सामान्य तौर पर तो लोग नारियल, बेल फल और अनार को भी श्री फल कहते हैं किन्तु आध्यात्मिक जगत व तंत्र शास्त्र में जिस विशिष्ट फल को 'श्री फल' के नाम से जाना जाता है वह एक बहुत ही छोटा सा फल है देखने में यह बड़ी इलायची जैसा तथा रूपाकार में नारियल के फल जैसा होता है इसके फल पर भी रेशे (जटायें) होते हैं तथा टहनी की ओर इस पर भी नारियल की भांति तीन बिन्दु पाये जाते हैं। 'श्री फल' नामक यह फल खासकर समुद्र तट पर उपजता है तथा तान्त्रिक वस्तुएँ बेचने वालों के पास आसानी से मिल जाता है। कम मूल्य और सहजता से प्राप्त होने वाले इस छोटे से फल के गुण अद्भुत एवं चमत्कारिक हैं अगर इसे विधिवत पूजन कर चैतन्य कर लिया जाय तो यह चमत्कारिक प्रभाव दिखाता है। इस फल को प्रतिष्ठान, तिजोरी बक्से या अन्न भण्डार में रखने से धन धान्य में अभूतपूर्व वृद्धि होती है।

तांत्रिक प्रयोग

'श्री फल' को किसी भी शुभ दिवस पर घर ले आयेँ और धो पोंछकर स्वच्छ कपड़े में लपेटकर एकान्त पवित्र स्थान में रख दें। गुरु पुष्प अथवा अन्य किसी शुभ मुहूर्त में इसे लाल कपड़े में रखें। स्नानादि से निवृत्त होकर अपने गुरु व ईष्ट का पूजन करने के उपरान्त 'श्री फल' पर सिन्दूर, कपूर, लौंग व छोटी इलायची चढ़ायें, धूप-दीप दिखायें और कोई मुद्रा (सिक्का) अर्पित करें तदुपश्चात् नीचे वर्णित मंत्र की 7, 9, 11 माला जप करें- मंत्र

॥ ॐ श्रीं श्रियै नमः ॥

मंत्र जप की समाप्ति पर श्रीफल को कपड़े सहित किसी कटोरी में रख दें। नित्य प्रति किसी देव प्रतिमा की तरह 'श्री फल' की सिन्दूर धूप, दीप आदि से पूजन करते रहें कभी-कभी सिक्के भी चढ़ाते रहें। 'श्री फल' की यह साधना धन-धान्य में अभूतपूर्व वृद्धि करने वाली है विधिवत पूजित 'श्री फल' जिस घर में रहता है उस घर में सदैव भगवती लक्ष्मी की पूर्ण कृपा रहती है। धन-धान्य, यश, प्रसिद्धि की वृद्धि के

लिये यह प्रयोग बहुत ही सरल और प्रभावकारी है।

प्रतिष्ठान हेतु

पूर्ण विधि विधान से पूजित श्री फल को दुकान, प्रतिष्ठान में स्थापित करने से व्यापार में अप्रत्याशित लाभ होता है तथा आर्थिक स्थिति आश्चर्यजनक रूप से परिवर्तित होन लगती है। श्री फल को नवरात्रि के पवित्र दिनों में किसी भी दिन या फिर अष्टमी के दिन अपनी दुकान, प्रतिष्ठान या कार्यालय में जहाँ भी लेन-देन या व्यवसाय होता हो वहाँ सिद्ध 'श्री फल' किसी सुरक्षित स्थान पर रख दें तथा नियमित धूप दीप दिखाते रहें और एक सिक्का चढ़ाते रहें।

तिजोरी/बक्से में रखें

पूर्व वर्णित विधि से पूजित 'श्री फल' को यदि तिजोरी या बक्से में रख दिया जाय तो उसमें मुद्रायें स्वयमेव बढ़ने लगती हैं किन्तु इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि 'श्री फल' जहाँ रखा हो वहाँ पर बढ़ती हुयी मुद्राओं को खर्च के लिए न निकालें। खर्च के लिए अलग से पैसे रख लें। 'श्री फल' में लगातार मुद्राएँ चढ़ाते रहें तो धन-धान्य में आश्चर्यजनक वृद्धि होती है।

यदि आप गोलक (पैसे संग्रह करने का एक पात्र) रखते हैं तो पूजित 'श्री फल' को गोलक में एक बड़ा छेद बनाकर उसके अंदर डाल दें और यह छेद बंद कर दें सिर्फ पैसे डालने के लिए जगह रहने दें आप देखेंगे कि आश्चर्यजनक तरीके से गोलक अपेक्षाकृत कम समय में भर जायेगी।

अन्न भण्डार में 'श्री फल' रखने से इसका चमत्कारी प्रभाव देखने को मिलता है इस सम्बन्ध में शास्त्र कहते हैं कि-
धान्यानां संग्रहो राजनुत्तम सर्व संग्रहात्।
बुभुक्त हि मुखे रत्नं न कुर्याय प्राण धारणम्॥

यह तथ्य निर्विवाद रूप से सत्य है कि विधिवत पूजित 'श्री फल' अन्न भण्डार में रखने से वह कभी रिक्त नहीं होता और उसमें सदैव अन्न का ढेर लगा रहता है।

कुश

वैसे तो कुश एक साधारण घास है जिसकी पत्तियाँ नुकीली और दाँतदार होती है और सामान्य तौर पर यह मनुष्यों के लिए कष्टदायक ही है क्योंकि रास्ते में इसके

कंटीले पौधे हाथ पैरों में चुभकर पीड़ा ही पहुँचाते हैं यहाँ तक कि जानवर भी इसे कम ही चरते हैं। इतनी विषमताओं के बावजूद भी सहजता से हर जगह मिलने वाली इस साधारण सी घास का तंत्र शास्त्र में असाधारण महत्व प्रतिपादित किया गया है। इसकी गुणवत्ता सारे अन्तर्विरोधों व अवगुणों को समाप्त कर देती है। आध्यात्मिक क्षेत्र में कुश को अत्यंत पवित्र, सिद्धि दायक, धन धान्य वर्धक व उपयोगी माना गया है कुछ देवताओं के पूजन में दूर्वा (दूवा) को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है किन्तु कुश एक ऐसी वनस्पति है जिसका उपयोग देवताओं, पितरों और प्रेतों तक के लिये समान रूप से होता है।

कुश की पवित्री

कुश की पवित्री बनाकर अनामिका में धारण करने पर ही अनेक पूजन विधान पूर्ण व शुद्ध माने जाते हैं। कोई भी धार्मिक अनुष्ठान हो, पूजन हो या संस्कार उसे सम्पन्न कराने वाले पण्डित आपको पवित्री अवश्य पहनायेंगे। इतना ही नहीं पितरों के आह्वान, श्राद्ध, तर्पण और क्रिया-कर्म आदि में भी पवित्री धारण करना अनिवार्य होता है दिवंगत व्यक्ति के नाम पर पण्डदान के समय कुश को ही प्रमुख आधार बनाया जाता है। कुश से जल छिड़कना कुश को देवता विशेष का अंश मानकर उसकी पूजा करना, मण्डप आदि की रचना, कुशासन तथा अन्य धार्मिक कृत्यों में इसका प्रयोग कुश के आध्यात्मिक महत्व को प्रतिपादित करता है। यह धन-धान्य, समृद्धि, पवित्रता, सात्विकता और विवेक की वृद्धि करता है।

आसन

साधना व पूजन आदि के लिये कुश से निर्मित आसन सर्वश्रेष्ठ माना गया है यह अत्यंत लाभकारी, सर्वसिद्धिदायक, धनवर्धक व देवानुकूलन में सहायक है। यहाँ यह तथ्य ध्यान देने योग्य है कि आसन कुश का ही हो क्योंकि कुछ दुकानदार कांस का आसन कुश के नाम से बेचते हैं कुश की पत्ती कांस की अपेक्षा कम लम्बी, चौड़ी दांतदार और मोटी होती है। इसलिए प्रकार भेद से कांस और कुश की पहचान कर लेनी चाहिए।

पवित्री

कुश की पवित्री अपने नाम के अनुरूप ही पवित्र होती है। इसे धारण करने का आशय है साधक का उस समय तन-मन से पवित्र और समस्त बाहरी बाधाओं से सुरक्षित हो जाना पवित्री का निर्माण वैदिक मंत्रों द्वारा किया जाता है अतः पूर्ण विधि विधान से इसका निर्माण कर पाना सभी

साधकों के लिए सुविधाजनक नहीं है अतः किसी पुरोहित को यथोचित दक्षिणा देकर शुभ मुहूर्त में मंत्र सिद्ध पवित्री बनवा लेनी चाहिए। उसे पूजन अनुष्ठान में पहने तथा बाद में उतारकर पूजा स्थल में या अन्य किसी पवित्र स्थान में रख दें। यहाँ यह बात अवश्य ध्यान रखना चाहिए कि निकृष्ट कर्म या तामसिक साधना में पवित्री का प्रयोग सर्वथा वर्जित है।

कुशमूल की माला

अध्यात्म के क्षेत्र में कुश मूल (कुश की जड़) की माला को सर्वश्रेष्ठ माना गया है। मंत्र जप के लिए शंख, कौड़ी, मोती, मूंगा, पुत्रजीवक, तुलसी, वैजंती, रुद्राक्ष, चन्दन, स्फटिक आदि विभिन्न मालाओं में से कुशमूल की माला श्रेष्ठ होती है।

माला निर्माण के लिए रवि पुष्य योग में कुश की जड़ें खोद लायें और उन्हें धोकर गाँठ काट लें फिर सुई धागे की सहायता से एक-एक गाँठ पिरो लें। कुश ग्रंथि की 108 दानों की माला बनाकर यदि जप किया जाय तो अत्यधिक लाभ होता है। धन-समृद्धि के लिए की जाने वाली पूजा साधना के मंत्र जप में इसे वरीयता प्राप्त है। धन वृद्धि के लिए किसी रवि पुष्य योग में कुशमूल ले आयें और शुद्ध जल से स्नान कराकर देव प्रतिमा की भांति उसका पूजन करें और लाल कपड़े में लपेटकर भण्डार या तिजोरी में रख दें और दैनिक धूप दीप से पूजन करें इससे साधक को कभी धन की कमी नहीं रहती और सदैव भगवती लक्ष्मी की कृपा प्राप्त होती है।

कुशाग्र ग्रंथि

जैसा कि पहले कहा जा चुका है कुश की जड़ की गाँठों का प्रयोग माला बनाने में होता है किन्तु इसके तने में पायी जाने वाली गाँठ अत्यंत ही समृद्धिकारी होती है। इसे भरणी नक्षत्र में घर ले आयें विधिवत प्रतिष्ठित कर भगवती लक्ष्मी का प्रतिरूप मानकर लाल चन्दन, सिन्दूर, कपूर, लौंग इलायची, पुष्प, अक्षत आदि से पूजन करें यदि सम्भव हो तो मंत्र जप कुशमूल की माला से करें तदुपरांत लाल कपड़े में लपेटकर कोष, भण्डार, तिजोरी आदि में स्थापित कर दें। नियमित रूप से धूप-दीप आदि से पूजन करते रहें। इस तरह प्रयोग करने से आपको शीघ्र ही चमत्कारी प्रभाव दृष्टिगोचर होंगे तथा धन-धान्य का कभी अभाव नहीं रहेगा।

मंत्र

॥ ॐ श्रीं श्रियै नमः ॥

दीक्षा का कायाकल्प

सभी दीक्षाओं के मूल में है कायाकल्प का विधान। इस दुनियाँ में अनंत काल से क्या हो रहा है? सिर्फ कायाकल्प की कोशिश। 15 वीं शताब्दी के आस-पास यूरोपी देशों में जनसंख्या बहुत बढ़ गयी। साधन एवं जमीन सीमित पड़ गई। वहाँ के बुद्धिमान राजपुरुषों ने जोरदार चिंतन शुरू किया। लोगों को भूखा मरता देख उनके सामने नई जमीन, नई संभावनाएँ, नई प्रचुरता ही

एक मात्र उपाय बचा रह गया।

इंग्लैण्ड, फ्रांस, पुर्तगाल, डेनमार्क इत्यादि देशों के लोगों ने अपने-अपने राजाओं की सहायता से अपने लोगों के कायाकल्प के लिए विश्व के सभी कोने में पहुँचने हेतु साहसिक जल यात्रा अभियान प्रारम्भ किया।

उनकी सामूहिक चेतना शक्ति ने कुछ ही वर्षों में उनके सामने ज्ञान, प्रगति, गतिशीलता एवं विज्ञान के अनेकों रास्ते खोल दिए। सब जगह, समस्त विश्व में यूरोप वासियों का कब्जा हो गया। एक छोटे से द्वीप से निकलकर वे सारे विश्व में फैल गये। विश्व का ऐसा कोई सा भी कोना नहीं बचा जहाँ इनकी सत्ता नहीं चलती हो। करोड़ों हाथों को रोजगार मिल गया। प्रतिदिन सोने-चाँदी, रत्नों, अमूल्य औषधियों, ज्ञान की पुस्तकों इत्यादि से भरे जहाज यूरोप के बंदरगाह पर उतरने लगे। इतना लूट लिया कि आज तक बैठकर खा रहे हैं। अभी भी विश्व के कई देशों में इन्हीं का राज्य है, इन्ही की चलती है। देखते ही देखते यूरोप का कायाकल्प हो गया। आस्ट्रेलिया, भारत,

अफ्रीका, अमेरिका, सब जगह इन्हीं का प्रादुर्भाव हो गया। 50 वर्ष पहले तो इंग्लैण्ड के साम्राज्य में सूर्य डूबता ही नहीं था। यह हुई स्थूल रूप से कायाकल्प करने की प्रक्रिया। सारा विश्व आज भी इसी तरफ भाग रहा है। मुँह पर पाउडर लगाओ, बालों को रंग लो, इत्र छिड़क लो, उत्तम वस्त्र पहन लो इत्यादि-इत्यादि यह सब कायाकल्प के अन्तर्गत ही आता है। फर्क तो इससे भी

पड़ता है। यह भी कायाकल्प का एक

हिस्सा है। मनुष्य निर्मित

अधिकांशतः कल-कारखाने

इसी कायाकल्प की व्यवस्था

को बनाने के लिए चलाए जा

रहे हैं। स्थूल के बाद कारण

आता है। कारण मय कोष

का मतलब है ज्ञान, बुद्धि,

चेतना, तर्क इत्यादि का

विकास करना एवं दृष्टि को भी

काफी हद तक विकसित करना,

सामाजिक नियमों में लचीलापन

लाना इत्यादि इससे भी कायाकल्प होता

है। यहाँ पर भी औषधि चिकित्सा क्रियाशील

है ध्यान रहे औषधि कायाकल्प का एक अत्यन्त ही

महत्वपूर्ण अंग है। वेदों में इसके बारे में सविस्तार से लिखा

हुआ है। जब भोजन ही नहीं होगा, अन्न ही नहीं होगा

तो फिर इस देश में कायाकल्प नहीं हो सकता। कारण

का तात्पर्य है शरीर के अंदर जाकर स्वतः क्रियाशील होने

वाली वस्तु। तीसरी स्थिति है सूक्ष्म शरीर। मुख्य रूप से

यही मेरा विषय है। अध्यात्म के अंतर्गत यहीं पर परिवर्तन

किया जाता है। इसी तल पर परिवर्तन हेतु गुरु का प्रादुर्भाव

होता है। इसी तल पर परिवर्तन करने से दस्यु वाल्मीकि



रामायण के रचयिता बन जाते हैं। यहीं पर आघात लगने से या शक्तिपात करने से तुलसी दास का प्रादुर्भाव होता है। यहीं पर चेतना जागृत होने से विश्वामित्र ब्रह्मऋषि बने हैं नहीं तो वे क्या थे ये जग जाहिर है। यहीं पर मेरे गुरु ने भी प्रहार किया था अन्यथा जीवन बस नारकीय ही होता। कहने का तात्पर्य यह है कि कायाकल्प की प्रक्रिया को अत्यंत ही गंभीरता से समाझिए इसमें समय लगता है बहुत ही सब्र रखना पड़ता है। जल्दी बाजी में सब कुछ अधपका रह जाता है। साँप की नई केंचुली आ जाती है तभी पुरानी केंचुली गिरती है। कई चरणों में कायाकल्प की प्रक्रिया सम्पन्न होती है। लकड़ी से हीरे तक के निर्माण में अनेकों चरण होते हैं। विभिन्न-तापों पर लकड़ी को तपना पड़ता है तब कहीं जाकर वह हीरे में परिवर्तित हो पाती है बीच में तो वह कोयला ही रहती है। भारतीय दर्शन की यह विशेषता रही है कि इसमें चमत्कारिक रूप से कायाकल्प की शक्ति है। इस भूमि में तत्व ही कुछ ऐसे हैं। कल तक जो माँस, मदिरा, स्त्री में डूबे रहते थे आज वे दीक्षा के बाद सब कुछ छोड़ बैठे हैं। यह कायाकल्प की प्रक्रिया का ही चरण है। कायाकल्प का तात्पर्य है अपने जीवन की स्लेट पर लिखे बदनुमा चित्रों, लकीरों या घटनाओं रूपी अक्षरों को मिटाते चलो एवं एक निर्विकार नवीन संरचना करते चलो। व्यर्थ में मनुष्यों को मन मस्तिष्क में स्थापित मत करो। स्थापत्य सोच समझकर करो। मनुष्य भर जायेंगे मन में तो फिर देव शक्तियाँ कहां से स्थापित होंगी। सड़े-गले सम्बन्धों से जान बचाओ अन्यथा गुरु के लिए कार्य सम्पन्न करने को जगह ही नहीं बचेगी। जो कल था उसे भूलकर नवीन परिष्कृत मनुष्य बनने की कोशिश करो यही दीक्षा का विधान है। जीवन को व्यवस्थित करो, पूजा घर को व्यवस्थित करो, दृष्टि का विकास करो, शून्य से ही सब कुछ प्राप्त किया जाता है। अगर मंत्र बोलने नहीं आते हैं तो भी चिंता की बात नहीं है कोशिश करो 10 दिन में सब सीख जाओगे। घर में बैठे रहकर शेख चिल्ली के समान सोचने से कुछ नहीं होगा। एकाध बार गुरु से मुलाकात करके तो देखो। एक साथ अनेको तल पर क्रियायें सम्पन्न हो जायेंगी। फोटो के माध्यम से कई बार कई चरण रह जाते हैं। दीक्षा विज्ञान दो तरफा है। गुरु तो शक्तिपात पूर्ण तीव्रता से कर सकता है पर सामने वाले में ग्रहण करने के लिए हृदय श्रद्धा और

कितना विश्वास है यह भी देखना पड़ता है फिर भी असर तो निश्चित ही होता है। एक कक्षा में 50 विद्यार्थी होते हैं। एक ही शिक्षक, एक ही पुस्तक से एक बार में 50 विद्यार्थियों को पढ़ाता है। परीक्षा में प्रश्न पत्र भी एक जैसा ही होता है। समय भी सबको समान मिलता है फिर भी परिणाम भिन्न-भिन्न आते हैं। कुछ अनुत्तीर्ण हो जाते हैं, दूसरी बार में पास होते हैं। कुछ द्वितीय श्रेणी पास होते हैं, कुछ प्रथम श्रेणी भी आते हैं फिर भी खींचतान कर सभी को अगली कक्षा में बिठा दिया जाता है। गुरु के पास कृपांक भी होता है अर्थात् कृपा के अंक इसलिए कहा गया है "गुरु कृपा ही केवलम्" बस इतना ही कहना है। सब महालक्ष्मीमयी हो, सभी सुखी हों बस यही आशीवाद है।

॥ दीक्षया तत्पदम् आप्नुयात् ॥
दीक्षा से ही ईश्वर तक पहुँचा जा सकता है।

दीक्षाएं

- ✿ सर्वबाधा निवारण दीक्षा
- ✿ ऋण मुक्ति दीक्षा
- ✿ रोग मुक्ति दीक्षा
- ✿ सरस्वती दीक्षा
- ✿ ज्ञान दीक्षा
- ✿ तंत्र बाधा निवारण दीक्षा
- ✿ पितृदोष निवारण दीक्षा
- ✿ भाग्योदय दीक्षा
- ✿ शत्रु बाधा निवारण दीक्षा
- ✿ राज्याभिषेक दीक्षा
- ✿ ज्योतिषज्ञान प्राप्ति दीक्षा
- ✿ योग सिद्धि दीक्षा
- ✿ मंगली दोष निवारण दीक्षा
- ✿ व्यापार वृद्धि दीक्षा
- ✿ ईष्ट दर्शन दीक्षा

- ✽ महाकाली दीक्षा
- ✽ महालक्ष्मी दीक्षा
- ✽ शीघ्र विवाह दीक्षा
- ✽ पुत्र प्राप्ति दीक्षा
- ✽ मुकदमों में सफलता प्राप्ति दीक्षा
- ✽ ग्रहबाधा दोष निवारण दीक्षा
- ✽ गुरु हृदयस्थ धारण दीक्षा
- ✽ स्वतः भाग्य लेखन दीक्षा
- ✽ मनोकामना सिद्धि दीक्षा
- ✽ कालज्ञान दीक्षा
- ✽ साधना साफल्य दीक्षा
- ✽ गर्भस्थ शिशु चैतन्य दीक्षा
- ✽ जगदम्बा सिद्धि दीक्षा
- ✽ ब्रह्मत्व प्राप्ति दीक्षा
- ✽ सप्तहृदय गुरु धारण दीक्षा
- ✽ हृदय चक्र जागरण दीक्षा
- ✽ भ्रम निवारण दीक्षा
- ✽ महामृत्युञ्जय दीक्षा
- ✽ मंत्र सिद्धि दीक्षा
- ✽ यंत्र सिद्धि दीक्षा
- ✽ तंत्र सिद्धि दीक्षा
- ✽ यश प्राप्ति दीक्षा
- ✽ शिव दर्शन दीक्षा
- ✽ वाणी सिद्धि दीक्षा
- ✽ भूत-बाधा निवारण दीक्षा
- ✽ सम्मोहन दीक्षा
- ✽ सौन्दर्य प्राप्ति दीक्षा
- ✽ गृह क्लेश निवारण दीक्षा
- ✽ दाम्पत्य जीवन साफल्य दीक्षा

- ✽ आत्म उन्नति दीक्षा
- ✽ अकाल मृत्यु निवारण दीक्षा
- ✽ तीव्र भाग्योदय दीक्षा
- ✽ काल सर्प योग निवारण दीक्षा
- ✽ दुर्घटना नाशक दीक्षा

नोट: उपरोक्त दीक्षाएँ मांसाहार एवं मदिरापान करने वालों पर क्रियाशील नहीं होंगी।

सभी दीक्षाएँ फोटो द्वारा भी प्रदान की जाती हैं। फोटों से दीक्षा प्राप्त करने वाले पत्र के साथ एक बिल्व पत्र (बेल पत्ती) अवश्य भेजें।

जबाली लिफाफे के अभाव में पत्रोत्तर की अपेक्षा न करें।

दीक्षा संस्कार सम्बन्धित कार्यक्रम में अर्थ का उपयोग निषिद्ध है। सभी दीक्षाएँ आजीवन निःशुल्क सम्पन्न की जायेंगी। (गुरु आज्ञा)

सभी दीक्षाएँ निम्न ऋते पर प्रदान की जायेंगी-

साधना सिद्धि विज्ञान

फ्लेट नं. 1, 2 मिनाल व्यू-॥ पंजाबी बाग, भोपाल,
दूरभाष: 583637, 576346, 591143, 284177,

271116

-: दीक्षाओं का समय :-

प्रत्येक रविवार सायं 5 बजे से 8 बजे तक
(अन्य दिवसों पर पूर्व अनुमति से)

: विशेष दीक्षाएँ :

प्रत्येक गुरुवार को डॉ. साधना जी द्वारा विशेष शक्तिपात युक्त दीक्षाएँ प्रदान की जाती हैं साथ ही साधकों/शिष्यों की तमाम जिज्ञासाओं का समाधान भी निःशुल्क रूप से किया जाता है। दीक्षा सम्बन्धी जानकारी एवं आध्यात्मिक जिज्ञासाओं और सभी प्रकार की समस्याओं के लिए पाठक एवं साधकगण डॉ. साधना जी से सीधे दूरभाष क्रमांक 554925, 271116 पर सीधे बात कर सकते हैं।



त्यौहार

दीपावली पर सम्पन्न किये जाने वाले कुछ विशिष्ट पूजन

दीपावली के पावन पर्व पर चहुँ ओर निर्मल प्रकाश व्याप्त रहता है। अमावस्या की काली रात जगमगा उठती है और भगवती महालक्ष्मी अपने भक्तों को दुनियाँ के समस्त वैभव लुटाने के लिए तत्पर रहती हैं। उस दिन सम्पन्न किये गये पूजन से अभीष्ट सिद्धि प्राप्त होती है। इस दिन जिसके पास जो भी है वह उसे ही पूर्णता प्रदान करना चाहता है, उसे दिव्य और प्रभावी बनाना चाहता है उसके लिए कुछ संक्षिप्त प्रयोग यहां दिये जा रहे हैं जिन्हें करने से विद्या, बुद्धि, धन, धान्य, यश, ऐश्वर्य की वृद्धि होती है।

महाकाली (दादात) पूजन

साधक को चाहिए कि वह स्नानादि से निवृत्त होकर स्वच्छ आसन पर बैठे। सामने गुरु चित्र स्थापित कर संक्षिप्त गुरु पूजन करें तथा गुरु मंत्र की एक माला जप करें तत्पश्चात् स्याही युक्त दादात को भगवती महालक्ष्मी के सामने पुष्प तथा अक्षत की ढेरी में रखकर उस पर सिन्दूर से स्वास्तिक बना दें तथा मौली लपेट दें इसके



बाद निरन्तर निम्न मंत्र का जप करते हुये पुष्प अक्षत गंधादि से पञ्चोपचारों पूजन करें

मंत्र

“ॐ महाकाल्यै नमः”

पूजन समाप्ति पर दोनों हाँथ जोड़कर निम्नानुसार प्रार्थना करें।

कालिके ! त्वं जगन्मातर्मसिरूपेण वर्तसे ।

उत्पन्ना त्वं च लोकानां व्यवहारप्रसिद्धये ॥

या कालिका रोगहरा सुवन्द्या भक्तैः समस्तैर्व्यवहारदक्षैः

जनैर्जनानां भयहरिणी च सा लोकमाता मम सौख्यदास्तु ॥

लेखनी पूजन

साधक के भौतिक जीवन में लेखनी का अत्यधिक महत्व है। लेखनी पर ही सम्पूर्ण हिसाब किताब निर्भर है। साहित्यकारों, कलमकारों व बुद्धिजीवियों की लेखनी ही उन्हें यश प्रसिद्धि दिलाती है अतः दीपावली पर लेखनी का पूजन अवश्य करना चाहिए।

सर्वप्रथम पूर्वानुसार गुरु पूजन व गुरु मंत्र का जप करने के उपरान्त लेखनी पर मौली बाँधकर सामने रख लें और दोनों हाँथ जोड़कर प्रार्थना करें-

लेखनी निर्मिता पूर्वं ब्रह्मणा परमेष्ठिना ।

लोकानां च हितार्थाय तस्मात्तामं पूजयाम्यहम् ॥

इसके पश्चात् "ॐ" लेखनी स्थायै देव्यै नमः

इस मंत्र द्वारा गंध पुष्पाक्षत् आदि विविध उपचारों से उसकी पूजा तत्पश्चात् दोनों हाँथ जोड़कर प्रार्थना करें-

शास्त्राणां व्यवहाराणां विद्यानामाप्नुयाद्यतः ।

अतस्त्वां पूजयिष्यामि मम हस्ते स्थिरा भव ॥

सरस्वती-(पञ्जिका-बही-खाता) पूजन

पञ्जिका- बही, बसना तथा थैली में रोली या केसर युक्त चन्दन से स्वास्तिक-चिह्न बनाये तथा थैली में पाँचा हल्दी की गाँठें, धनियाँ, कमलगट्टा, अक्षत, दूर्वा और द्रव्य रखकर उसमें सरस्वती का पूजन करें। सर्वप्रथम सरस्वतीजी का ध्यान इस प्रकार करें-

ध्यान-

या कुन्देन्दुतुषारहारधवला या शुभ्रवस्त्रावृता ।

या वीणावरदण्डमण्डितकरा या श्वेतपद्मासना ।

या ब्रह्माच्युतशङ्करप्रभृतिभिर्देवैः सदा वन्दिता

सा मां पातु सरस्वती भगवती निः शेषजाड्याजहा ॥

'ॐ वीणापुस्तकधारिण्यै श्री सरस्वत्यै नमः' - इस नाम मंत्र से गन्धादि उपचारों द्वारा पूजन करें।

कुबेर पूजन

तिजोरी अथवा रुपये रखे जाने वाले संदूक आदि को स्वस्तिकादि से अलंकृत कर उसमें निधिपति कुबेर का आवाह करें-

आवाहयामि देव त्वामिहायाहि कृपां कुरु ।

कोशं वर्द्धय नित्यं त्वं परिरक्ष सुरेश्वर ॥

आह्वान के पश्चात् 'ॐ कुबेराय नमः' इस नाम-मंत्र से यथोलब्धोपचार-पूजनकर अन्त में इस प्रकार प्रार्थना करें-

धनदाय नमस्तुभ्यं निधिपद्माधिपाय च ।

भगवन् त्वत्प्रसादेन धनधान्यादिसम्पदः ॥

इस प्रकार प्रार्थना कर पूर्वपूजित हल्दी, धनियाँ, कमलगट्टा, द्रव्य, दूर्वादि से युक्त थैली तिजोरी में रखें।

तुला तथा मान-पूजन

सिन्दूर से तराजू आदि पर स्वस्तिक बना ले। मौली लपेटकर तुलाधिष्ठातृदेवता का इस प्रकार ध्यान करना चाहिये-

नमस्ते सर्वदेवानां शक्तित्वे सत्यमाश्रिता ।

साक्षीभूता जगद्धात्री निर्मिता विश्वयोनिन ॥

ध्यान के बाद 'ॐ तुलाधिष्ठातृदेवतायै नमः' इस नाम-मंत्र से गन्धाक्षतादि उपचारों द्वारा पूजन कर नमस्कार करें।

योग

कुछ मनुष्य समुद्र को दूरदर्शन पर देखते हैं, कुछ तट पर खड़े होकर निहारते हैं, कुछ नाव में बैठकर थोड़ा बहुत घूम फिर लेते हैं और कुछ मतवाले सीधे गोता लगाते हैं समुद्र के अंदर गहराई तक जाते हैं। बहुत से दुर्लभ दृश्यों और अनुभवों से एकाकार करते हैं। जिसकी जैसी ताकत और जुनून उसका योग भी उतना ही विस्तृत। क्षमता बढ़ाई जा सकती है बहुत कुछ प्राप्त किया जा सकता है। बहुत कुछ प्राप्त करने को है। कोशिश तो करो। कुछ योगी दो चार आसन को योग कहते हैं, कुछ प्राणायाम और ध्यान पर ही अटक जाते हैं परन्तु कुछ बहुत दूर निकल जाते हैं। उन्हें बस परम धाम में निवास कर रहे प्रभु श्रीकृष्ण की तलाश होती है। योगी का मूल उद्देश्य योगेश्वर की प्राप्ति होना चाहिए अर्थात् योगियों के भी ईश्वर प्रभु श्री कृष्ण। यही एक सच्चे योगी की पहचान है। योग मात्र तकनीक नहीं है, तकनीक में प्रेम का अभाव होता है। योग शरीर का ही विषय नहीं है योग तभी सफल है जब आत्मा से परमात्मा का मिलन होता है। मैंने बहुत से हठयोगी देखे हैं खूब आसन लगाते हैं फिर भी शरीर से बदबू आती है। ऐसे योगी भी देखे हैं जो घण्टों एक टांग पर खड़े रहते हैं परन्तु धन और स्त्री को देखकर लोलुप हो जाते हैं इसके अलावा इतने प्रेममयी व्यक्तित्व भी देखे हैं जो मात्र भजन करते हैं, गीत गाते हैं और उनके चेहरे पर तथाकथित योगियों की अपेक्षा ज्यादा चमक, शांति और तृप्ति होती है। सिर्फ योग से काम नहीं चलेगा महायोग को भी समझना पड़ेगा। रसेश्वरी विद्या में दक्ष होना पड़ेगा। पारद शिवलिंग भी स्थापित करना पड़ेगा। सारा विज्ञान एक तरफ और पारद विज्ञान एक तरफ। पारा ब्रह्माण्ड का वीर्य है। जब यह जड़ी बूटियों एवं शिव मंत्रों के द्वारा विशुद्ध रूप में शिवलिंग के रूप में बांधा जाता है तब इसकी

छटा देखने योग्य होती है एवं इसके साथ जब योगी योग सम्पन्न करता है तो फिर महाऐश्वर्य की ही उत्पत्ति होती है। जिस योगी के पास महाऐश्वर्य न हो वह किस बात का योगी जिसके सामने लक्ष्मी नृत्य न करे उसका योग निश्चित ही असफल है। महालक्ष्मी का अभाव योगमार्ग में योगी की कमी दर्शाता है। कृष्ण पूर्णता है। पूर्णता ही योग है। पूर्णता ही योगी का लक्ष्य है। अपूर्णता को हटाने का ही मार्ग योग है। इन्द्रियाँ मस्तिष्क में लगी कोशिकाओं के आदेशानुसार क्रियाशील होती हैं। मस्तिष्क की कोशिकाएँ पंचेन्द्रियों के माध्यम से संवेग ग्रहण करती हैं परन्तु विलक्षण मनुष्यों में पंचेन्द्रियों के अलावा अन्य इन्द्रियाँ भी मस्तिष्क की कोशिकाओं को संवेग प्रदान करती हैं। इन सब व्यवस्थाओं के माध्यम नियंत्रण तंत्र अवस्थित होता है। नियंत्रण तंत्र कई प्रकार के द्वारों से युक्त होता है। योगी इन द्वारों को योग शक्ति के माध्यम से बंद या खोल सकता है। यही कमलात्मिका सिद्धि है। जिस प्रकार कमल का पुष्प खुलता और बंद होता है उसी प्रकार सम्पूर्ण शरीर में मौजूद अरबों-खरबों द्वार खोलने और बंद करने आने चाहिए। यह स्थितियाँ इन्द्रिय-जय बना देती हैं। इन्द्रिय-जय की वास्तविक भुवन हैं प्रभु श्रीकृष्ण के स्थापत्य का। प्रभु श्रीकृष्ण अर्थात् सभी से सर्वथा मुक्त कहीं भी लिप्त नहीं। ऐसे व्यक्ति सम्मोहनकारी होते हैं। ऐसे योगी ही वास्तविक प्रेम के केन्द्र होते हैं। जो सिर्फ लुटाते ही लुटाते हैं। यही योगी की वास्तविक पहचान है इसके अलावा दुर्योधन जैसे योगी भी हैं जो घण्टों पानी के नीचे श्वास रोककर तो बैठ सकते हैं परन्तु भाइयों के हक पर भी उनकी गिद्ध दृष्टि है। भीष्म जैसे योगी भी हैं जिन्हें इच्छा मृत्यु भी सिद्ध है फिर भी व्यर्थ की शपथ से बंधे हुए हैं। युद्ध में जानते हुए भी कौरवों के साथ खड़े हैं। द्रोण जैसे योगी भी हैं जो कि युद्ध कला में तो निपुण हैं फिर भी पुत्र मोह से ग्रसित हैं। कर्ण जैसे महायोगी भी हैं जो कि कवच और कुण्डल भी दान कर सकते हैं फिर भी अहं के कारण श्री कृष्ण से भी बैर रखते हैं।

ऊपर वर्णित सभी भ्रष्ट योगी हैं। योग और भोग एक साथ नहीं चलता। यह पतन का मार्ग है। इसी प्रकार के सत्यानाशी योगियों ने इस पृथ्वी पर हाहाकार मचा रखा है। हिटलर की भी प्रेमिका थी। यहूदियों की हत्या करता था एवं यहूदी स्त्री से प्रेम भी करता था। दोनों ने साथ-साथ आत्महत्या की। प्रेम की जरूरत तो विश्वामित्र को भी थी। मेनका से प्रेम कर बैठे एक दिन अप्सरा उन्हें छोड़कर चली गई। मस्तिष्क की आवश्यकताओं से कोई नहीं बच सका। भागने से काम नहीं चलता जितने भी दुर्दान्त और कुख्यात राजा हुए हैं सबने ढेर सारी स्त्रियों से विवाह किया। ये सब किस बात के योगी हैं। मस्तिष्क को तो समझ नहीं पाये योग की क्रिया क्या समझेंगे। प्रेम पाने के लिए योग्य बनना होगा। योग्यता के अभाव में प्रेम लेन-देन का विषय है। सभी के अंदर बाल्यावस्था मौजूद है। मस्तिष्क की दीर्घ जीविता, क्रियाशीलता एवं गुणवत्ता उसके अंदर मौजूद बालपन पर निर्भर करती है। बालक विशुद्ध प्रेम कर सकता है। बालक को देखते ही सभी के अंदर हृदय से प्रेम उमड़ आता है। योग की सभी क्रियाएँ आपको पुनः बाल्यावस्था प्रदान करती हैं। सभी बाल्यावस्था के गुम जाने से दुखी एवं व्यथित होते हैं। अध्यात्म के क्षेत्र में परम अवस्था को परमहंस के नाम से अलंकृत किया जाता है। परमहंस अवस्था उस भोलेपन, माधुर्य, निश्चलता, सहजता और अनासक्ति का प्रतीक है जिसमें कि ब्रह्माण्ड की समस्त शक्तियाँ मातृमय स्वरूप में आपको संस्पर्शित करती हैं। बाल्यावस्था में ही मस्तिष्क तथाकथित सम्बन्धियों, जिम्मेदारियों, समस्याओं और कुछ बनने की प्रवृत्ति से मुक्त होता है। इस प्रकार का मस्तिष्क त्वरित निर्णय, आलोचना, तर्क-कुतर्क एवं अन्य नकारात्मक शक्तियों से ग्रसित नहीं होता है। ऐसे मस्तिष्क को न किताब लिखने की जरूरत है, न ही प्रवचन की, न ही पाण्डित्य दिखाने की। यह अति दुर्लभ अवस्था है। यहाँ पर वाणी, शब्दों एवं अन्य माध्यमों की उपस्थिति प्रसंगहीन है। इसे कहते हैं विशुद्ध प्रेममयी मस्तिष्क या अवस्था। बस प्रेम की भाषा

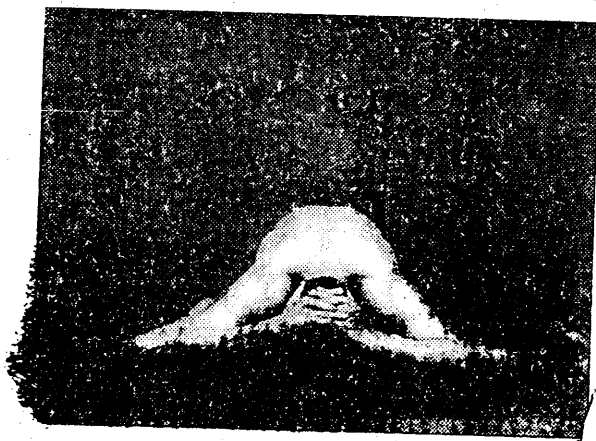
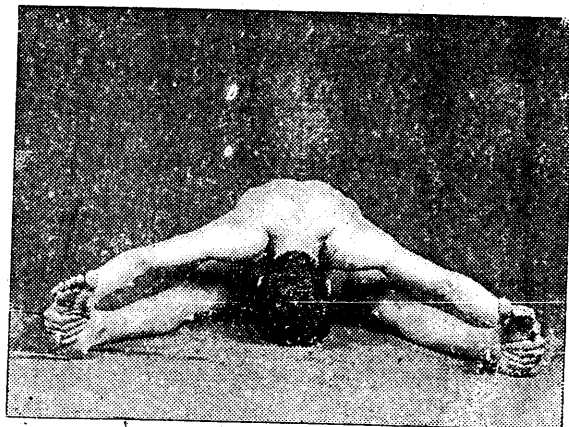
को ही समझना, प्रेमोत्पादन करना, प्रेम को ही ग्रहण करना, प्रेम का ही सम्प्रेषण करना यही योगेश्वर की पहचान है, यही श्रीकृष्ण है, यही योगी का लक्षण है, यही अमृत है।

उग्र-आसन

सर्वप्रथम दोनों टाँगों को आगे की तरफ सीधा रखते हुए नितम्बों के बल बैठ जायें, पाँव के दोनों पंजों के बीच ढाई से तीन फिट की दूरी बना लें। फिर दायें हाथ ने दायें पंजे को पकड़े और बायें हाथ से बायें पंजे को पकड़ लें। श्वास छोड़ते हुए पेट को पिचकाएँ और फिर तीव्र आंतरिक शक्ति से सिर की आगे की तरफ झुकाते हुए भूमि से स्पर्श करा दें।

यथासम्भव इस स्थिति में रुकने की कोशिश करें। आसन की पूर्व अवस्था में पाँव घुटने से मुड़ने नहीं चाहिए परन्तु हाथों को कोहनियों से मोड़ा जा सकता है।

★



ब्रह्म विद्या

विश्वामित्र एक अति तेजस्वी एवं प्रतापी राजा थे आर्यों के इस महान शासक ने सम्पूर्ण पृथ्वी पर एकाधिकार करने के लिए अश्वमेध यज्ञ सम्पन्न किया परन्तु जैसे ही यह ब्रह्मर्षि वशिष्ठ के सम्मुख पहुँचे इनका सारा तेज जाता रहा। इनके सारे यत्न असफल हो गये, सारे शस्त्र निष्फल हो गये। कल तक जो विश्वामित्र राज्य, सत्ता, शक्ति, सेना के दम्भ पर अपने आपको दिग्विजयी समझ रहा था उसने ब्रह्मत्व धारण किए हुए निःशस्त्र ब्रह्मर्षि वशिष्ठ के सामने पराजित, लज्जित एवं अपमानित स्थिति में अपने आपको

खड़ा हुआ पाया। ऐसा पहली बार नहीं हुआ है भारत भूमि पर। सिकन्दर ने भी अपने आपको इसी भाव में लाचार खड़े पाया है। उसकी बुद्धि के द्वार भी भारत वर्ष में ही खुले हैं। मुगल सम्राट अकबर भी ब्रह्मज्ञानियों के चरणों में झुका है। तुलसीदास जी और मीरा दोनों के चरणों में ही अकबर का सर झुका है। उसने भी थक हारकर एक ईश्वरवाद के इस्लामी सिद्धांत को छोड़ ब्रह्म ज्ञानियों की महत्ता स्वीकार की है एवं दीन-ए-इलाही जैसे नये पंथ का भी उसे अनुसरण करना पड़ा है। निराकार को पूजने से कुछ नहीं होता है। निराकार भी कोई पूजने की वस्तु है दिल को

बहलाने वाला यह तथाकथित सिद्धांत तो कृष्ण ने गीता में स्वयं ही खण्डित कर दिया है। इस सिद्धांत पर चलकर दस पीढ़ियों में से एकाध को ही साक्षात्कार सम्भव हो पायेगा। इस प्रकार की आध्यात्मिक धारा सामान्य जन को

क्या लाभ पहुँचायेगी? क्यों सामान्य जन इसे अपनायेगा? यही कारण है कि सद्गुरुओं, ब्रह्मर्षियों के सानिध्य में अध्यात्म फलता-फूलता है। परमेश्वर गुरु अपनी जगह है और वर्तमान का गुरु अत्यधिक महत्व लिए हुए है। जिन देश में उपासकों को प्रतिबंधित कर दिया जाता है, जिस घरों में अभिभावक पूजा पद्धति या गुरु की अवमानना करते हैं वहाँ पर राक्षसी एवं ताण्डवी शक्ति का वास होता है। अगर घर में बिजली के तार खींचे ही नहीं जायेंगे तो फिर मोमबत्ती या चिमनी की आवश्यकता होगी फिर भी अंधेरा



पूरी तरह नहीं मिट पायेगा। ब्रह्मर्षि का तात्पर्य ही वह व्यक्तित्व है जो कि स्वच्छ, निर्मल, निर्विकार एवं निखिल प्रकाश का ऊर्जा केन्द्र है। जिसके अमृतमयी प्रकाश में मनुष्य के सभी तलों पर से अंधेरा गायब हो सके, हृदय भी प्रकाश युक्त हो सके मन भी निर्मल प्रकाशमय हो जगमगा उठे, विचारों एवं बुद्धिपक्ष में भी इतना प्रकाश भर जायें कि अंधेरे में बिलबिलाने वाले कीड़े-मकोड़े और निशाचर शक्तियाँ स्वयं ही भाग खड़े हों। निशाचरों को शक्तिहीन बनाता है प्रकाश। आप सूक्ष्मता से अध्ययन करेंगे तो पायेंगे कि उन जगहों पर ही नकारात्मक पैशाचिक एवं प्रेत शक्तियाँ क्रियाशील होती हैं

जहाँ पर कि अंधेरा घोरतम होता है। प्रकाश युक्त सद्गुणी वातावरण में पैशाचिक शक्तियाँ भाग जाती हैं। आदि गुरु शंकराचार्य जी एक बार वन में एक वृक्ष के नीचे बैठे थे। उस पेड़ पर दो प्रेत निवास करते थे शंकराचार्य जी

को देख प्रेत ताण्डव करने लगे उन्होंने दूसरे ही क्षण अपने कमण्डल से अभिमंत्रित जल निकालकर वृक्ष पर छिड़क दिया देखते ही देखते वे प्रेत योनि से मुक्त हो वहाँ से सदा के लिए चले गये। इस प्रकार वो अभिशप्त जगह पुनः पवित्र हो पूजन स्थल में परिवर्तित हो एवं बाद में वहाँ पर देवालय का भी निर्माण हुआ। बुद्ध जब बोधि वृक्ष के नीचे बैठे निर्वाण प्राप्ति की अंतिम अवस्था में थे तब उस वन में उपस्थित सभी नकारात्मक शक्तियों ने भीषण ताण्डव उत्पन्न कर दिया उनके इर्द-गिर्द। वे सब भयभीत हो गये थे ब्रह्मत्व के प्रकाश से। ब्रह्मत्व क्या है? ब्रह्मत्व वह शक्ति है जिसे धारण कर व्यक्ति ब्रह्मण बनाता है एवं उसके मन, वचन, कर्म इत्यादि सभी कुछ सत्य, निष्ठा से ही क्रियाशील होते हैं ब्रह्मण का तात्पर्य है सत्य को पहचानना। अभेदात्मक सोच शालीनता, निर्लिप्तता एवं कर्तव्य परायणता। जीवन की क्षण भंगुरता से सत्य का कोई भी लेना देना नहीं है। ब्राह्मण का तात्पर्य है विराटता। विश्वामित्र ने अपने आपको वशिष्ठ के सामने बौना पाया। ब्रह्मऋषि इतने पारदर्शी होते हैं कि उनके सामने खड़े होते ही व्यक्ति चाहे कितने नकाब ओढ़े हो, कितना भी बनने की कोशिश करे अपने आपको नग्न पाता है, स्वयं वह क्या है उसे समझ में आ जाता है। हम स्वयं क्या हैं? बस इतनी सी बात समझ में आ जाये तो फिर ब्रह्मऋषि बनने में देर नहीं लगेगी। इस दुनिया की विडम्बना यह है कि यहाँ पर शासन करने वाले शक्ति से सम्पुट होते हैं। युवा होते हैं। वे जीवन की कोमलता, बाल्यावस्था को पूरी तरह दर किनार कर देते हैं अपने मस्तिष्क के उन्माद से व्यवस्था रचते हैं। उन्हें इस बात की फिक्र नहीं होती है कि इस दुनिया में बालक, शिशु, शांतिप्रिय सात्विकता लिए हुए उपासक, मनोहारी स्त्रियाँ इत्यादि भी समान रूप से वास करते हैं। उनके द्वारा रचे गये ताण्डवी युद्ध, ताण्डवी वातावरण, ऊट-पटांग योजनाओं इत्यादि से असंख्य प्राणियों के हृदय हाहाकार कर उठते हैं, चीत्कार कर उठते हैं। वे स्वयं जीना चाहते हैं और दूसरों की परवाह नहीं करते। अनंतकाल से ऐसा ही होता आ रहा है इसलिए इन सबका पतन हो जाता है। समय तो लगता ही है। एक बात ध्यान से समझ लें हृदय पक्ष मस्तिष्क से अनंत गुना ज्यादा शक्तिशाली है। आज तक मस्तिष्क ही परास्त होता आया है और होता रहेगा। मस्तिष्क ब्रह्म ज्ञानियों का शासक नहीं है वह तो मात्र विनम्र दास या सेवक की भांति उनकी

सेवा में सदैव तत्पर रहता है। मस्तिष्क से निर्मित समाजवाद कम्युनिष्ट व्यवस्था तानाशाही व्यवस्था, राजशाही व्यवस्था नौकरशाही इत्यादि पिछले पचास वर्षों में आपके समक्ष पूरी तरह ध्वस्त हो गई है। बचा है तो सिर्फ लोकतंत्र, जनतंत्र इसमें भी सुधार की आवश्यकता है क्योंकि मस्तिष्क कहीं-कहीं इसमें भी विकृति डालने से नहीं चूकता है। ब्रह्मऋषि बनना है या फिर ब्रह्मत्व से आत्म साक्षात्कार करना है तो फिर हृदय पक्ष को जागृत करना होगा अन्यथा कुछ भी नहीं होगा। जोर जबरदस्ती से तो विश्वामित्र भी कामधेनु को वशिष्ठ के आश्रम से नहीं ले जा सके। कामधेनु वहीं पर निवास करेगी जहाँ पर ब्रह्मत्व का स्थापत्य होगा। कामधेनु का तात्पर्य गौ वंश की उस दिव्य शक्ति से है जो कि साक्षात् लक्ष्मी स्वरूपा है एवं जिसका प्रत्येक कर्म लक्ष्मी का आनंदमयी स्वरूप ही प्रदान करता है। जितना चाहो, जब चाहो, जैसा चाहो वैसा दुग्ध वह आपको अमृतमय स्वरूप में प्रदान कर देगी। उसे देखते ही मन के सारे विकार धुल जाते हैं उसके सानिध्य में अलौकिक शांति या अनुभव होता है। ईश्वर भी है और ईश्वर के अलौकिक चमत्कार भी हैं। ईश्वर की अलौकिक सिद्धियाँ भी हैं। आप इस योग्य तो बनो कि वे आपके समक्ष प्रस्तुत हों। कामधेनु का दुग्ध तो क्या उसके शरीर से अष्ट गंध की सुगन्ध निरंतर फूटते रहती है। कामधेनु वहीं निवास करेगी जहाँ पर उसके कानों में प्रातःकाल गायत्री जैसे ब्रह्म मंत्र का उच्चारण सुनाई देगा। उसे स्पर्श करने वाला भी पूर्ण रूप से पापरहित ब्रह्म ऋषि ही होगा। उसे चारा खिलाने वाला अपनी आँखों में असीम निर्मलता एवं ममता से युक्त होगा। हिमालय पर सभी जगह शीतलता होगी। इसे कहते हैं स्वेच्छाचारिता। कामधेनु राजऋषि के आश्रम में निवास नहीं करेगी। कृष्ण में इतना ब्रह्मत्व था कि उन्हें देखते ही वृक्ष हरे-भरे हो जाते थे। जहाँ वे खड़े होते थे वहीं पर वातावरण अमृतमय हो जाता था। उनकी एक झलक अनंत वर्षों की थकान और तपन को शांत करने के लिए काफी थी। गायत्री मंत्र भी इस पृथ्वी पर कामधेनु के समान ही कार्य करती है साधकों के लिए। ब्रह्मत्व का प्रतिस्फुरण होते ही बुद्ध को विरक्ति आने लगी राज-पाट, जीवन-मृत्यु, वृद्धावस्था एवं दुनियादारी के अन्य तामझामों से जैसे-जैसे वे ब्रह्मत्व के करीब पहुँचते गये उनके विरक्ति भाव अत्यंत ही तीव्र हो उठे। तीव्रता के साथ-साथ वे अस्तित्व के सूक्ष्म से सूक्ष्म तल पर भी पहुँचते हुए उन्हें

सत्य से परिचित कराते हुए निष्पाप करने लगे और अंत में जब पूर्ण सत्य अर्थात् केवल्य ज्ञान अनुभूत हुआ तब वे परमोत्पादक बन सके। परमोत्पादन का मतलब है उन दिव्य धाराओं को प्रवाहित करना जो कि उनके द्वारा ग्रहण किए गये परम तत्व से सम्पुट हों। इन दिव्य उत्पादों को ही आप वेदों, छन्दों, ज्ञान, उपासना, पद्धति, योग, नियमों अमृतकारी प्रवचनों, दीक्षा, आशीर्वाद एवं वरदान स्वरूप में अपने समक्ष मौजूद पाते हैं। यही विधान है कायाकल्प का। कायाकल्प तो करणही पड़ता है। सभी ने कायाकल्प किया है। विश्वामित्र भी कायाकल्पित थे। बुद्ध भी कायाकल्पित हुए हैं। ऐसा क्या डाल दिया था परमहंस जी ने नरेन्द्र में जिससे कि वह एक सामान्य पुरुष से विवेकानंद बन बैठा। ऐसी कोई दवा तो दुकान पर बिकती दिखाई नहीं देती। मेरे गुरु ने भी पता नहीं क्या डाल दिया अन्यथा मैं भी दुनियादारी में उलझकर ही प्राणांत कर बैठा होता। यह पत्रिका आप तक नहीं पहुँचती। ब्रह्मऋषि क्या डालते हैं मालुम नहीं। उनका कोई ओर छोर नहीं होता। उनके आगे किसी का वश नहीं चलता। मीरा के आगे किसका वश चला? ब्रह्मऋषि बनने का तात्पर्य है ब्रह्माण्डीय पुरुष बनना। ब्रह्माण्डीय नायक बनना। ब्रह्माण्डीय पुत्र बनने पर ही जत्र ईसा को सूली पर से उतारा गया तो मरियम की गोद में ही उन्होंने सिर रखा। विष्णु जब युद्ध करते-करते थक जाते हैं तब योगमाया उन्हें शांत अवस्था में सुला देती है। ऐसा ही विश्वामित्र के साथ हुआ जब वे थक गये मैं और अहम की ताकत जबाब दे गयी तब गायत्री माता के रूप में प्रकट हुई। मेरे गुरु ने सही कहा है जब तक दो हाथ वाले से मांगते रहोगे चार हाथ वाला कभी नहीं देगा। स्वयंभू प्रतिष्ठित नहीं हो पाओगे। अध्यात्म के क्षेत्र में लोगों से प्रतिष्ठा मत मांगों। लोग यहाँ पर प्रतिष्ठित नहीं करते हैं। लोगों के पीछे दौड़ोगे तो फिर दौड़ते ही रहना। अगर वृक्ष अपने आपको न समेटे तो फिर उचित ऋतु आने पर आप फल कदापि नहीं खा पायेंगे। ब्रह्मऋषि बनना है तो सर्वप्रथम कायाकल्प की तीव्र लालसा होनी चाहिए। आज हम जो कुछ हैं उसे निवृत्त करना ही होगा। जहाँ-जहाँ कमजोरी, पापाचार एवं कुप्रवृत्ति हमारे अंतर्गत छिपी हुई है उसे त्यागना ही होगा। अहम और मैं को एक कोने में रख दो। ऐसे सानिध्यों को दूँढना पड़ेगा जहाँ से आपको अमृत-मयी तत्व प्राप्त हो सकें। ऐसे स्थानों पर वास करना होगा जहाँ का वातावरण अमृतमयी हो।

व्यर्थ में ऊर्जा नष्ट करने से या फिर टकराव की स्थिति निर्मित करने से तो घर्षण ही उत्पन्न होगा। घर्षण से अग्नि और तपन ही निकलती है। आपने सड़क के किनारे लगे वृक्षों को देखा है मैं पिछले बीस वर्षों से अपने घर के पास लगे एक आम के वृक्ष को देख रहा हूँ बेचारा नपुंसक हो गया है, दुनिया भर का प्रदूषण, शोर एवं स्पंदन इत्यादि झेल रहा है। न तो उसमें कभी आम लगते हैं और न ही वह घटता बढ़ता है। ऐसा ही होता है सड़े-गले वातावरण में रहने से। ब्रह्म शक्ति वह शक्ति है जिससे कि समस्त ब्रह्माण्ड का संचालन होता है जिससे कि यथा स्थिति बनी रहती है एवं प्रत्येक सूक्ष्म से सूक्ष्म आवृत्ति तत्व और जीव की क्रियाशीलता बनी रहती है। ब्रह्मशक्ति अनैतिक व्यवस्था में विश्वास नहीं रखती इसीलिए ब्रह्मता को निर्विकार निर्गुण कहा गया है। यह निर्लिप्त शक्ति है। अत्यंत ही सूक्ष्म एवं परिष्कृत नियंत्रणात्मक एवं अत्यंत ही सूक्ष्म क्रियाशीलता का नाम ही ब्रह्म शक्ति है। अद्वैत ही ब्रह्मा है। देखिए जीवन कितना सार्वभौमिक है। नियम बढ़ता कितनी कठोर एवं सुस्पष्ट है। सभी मनुष्यों को एक हृदय से काम चलाना पड़ता है। सभी मनुष्यों को ऊँचाई का एक निश्चित माप मिला हुआ है। आपने कभी ऐसा नहीं देखा है कि बीस फुट से लेकर आधे इंच तक के मनुष्य होते हैं। 99 प्रतिशत मनुष्य पांच फुट से लेकर छः फुट तक के मिलेंगे। कितनी निश्चितता है। अधिकांशतः स्त्रियाँ एक बार में और वह भी नौ महीने के अंतराल में ही एक बार बालक को जन्म देगी। 45 वर्ष की अवस्था तक पहुँचते-पहुँचते स्त्रियों में जन्म देने की क्षमता स्वयं ही समाप्त हो जाती है। 55 वर्ष की आयु में पुरुष में संतानोत्पत्ति की क्षमता खत्म हो जायेगी। शेर दस फिट का ही होगा सौ फिट का नहीं। सीमाएँ पूरी तरह निर्धारित हैं। अधिकतम सीमा तो कठोरता के साथ निर्धारित हैं। अब इसमें घट बढ़ का क्षेत्र मनुष्य के कर्मों के आधार पर छोड़ दिया ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार सम्पूर्ण भारत वर्ष में आप बिना किसी रोक-टोक के आ जा सकते हो, कहीं पर भी नौकरी कर सकते हो परन्तु बाहर जाने के लिए कुछ अन्य आवश्यकताएँ पड़ती हैं। योग्य होंगे तो जा पाओगे। आपकी मर्जी नहीं चलेगी। ऐसा नहीं हो सकता कि आप अपने पूरे परिवार का बोरिया बिस्तर बाँधें और हवाई जहाज का टिकट लेकर अमेरिका में जा बसें। जब मानव निर्मित नियम इतने कठोर हैं तो फिर ब्रह्म शक्ति

द्वारा निर्मित नियम कैसे होंगे खुद ही अंदाजा लगा सकते हो। बस यहीं से शुरू होता है ब्रह्म वर्चस्व का प्रादुर्भाव। जिसने अति सूक्ष्मता और गूढ़ता के साथ ब्रह्म या ब्रह्माण्डीय या परा ब्रह्माण्डीय नियमों को समझ लिया, आत्मसात कर लिया वही ब्राह्मण कहलायेगा। ब्रह्म को धारण करने का यही विधान है। ब्रह्म नियम ही सत्य है। इसको आत्मसात किया हुआ व्यक्ति ही परम ब्रह्मास्त्रों से सुसज्जित होता है। यही धर्म धारण करने की विधि है। शंकराचार्य जी ने इसीलिए हाथ में ब्रह्म दण्ड धारण किया हुआ है। ब्रह्म-दण्ड प्रतीक है समस्त देव आयुधों का एवं जिसके अंतर्गत माँ भगवती द्वारा धारण किए गये सभी आयुध भी आते हैं। ब्रह्म दण्ड के अंतर्गत ही शाप भी आता है। ब्रह्म दण्ड किनके लिए है? ब्रह्म दण्ड उन कुमार्गियों के लिए है जो कि ब्रह्म शक्ति में अविश्वास रखते हैं एवं राक्षसी प्रवृत्तियों से युक्त होते हैं। जब ब्रह्म नियम कह रहे हैं कि साठ वर्ष की अवस्था काम लिसता के लिए नहीं है फिर भी राक्षसी गुणों के कारण भोगी इस ओर अग्रसर हो रहे हैं तो फिर निश्चित ही ये दण्ड के अधिकारी हैं अन्यथा ब्रह्म वर्चस्व समाप्त हो जायेगा। साठ वर्ष के भोगी सोलह वर्ष की कन्याओं से विवाह करने लगेंगे तो इस प्रकार समाज में कुकर्म फैल जायेगा। यही कारण है कि भोगी और कामी व्यक्ति मधुमेह, हृदय रोग एवं अन्य प्रकार के विकारों से ग्रसित हो जाते हैं। अत्यधिक कामातुर स्त्रियों के गर्भाशय जीवन के मध्य अवस्था में ही नष्ट हो जाते हैं। यह सब मनुष्य नहीं करता है कोई न कोई दिव्य शक्ति ही इस प्रकार के दण्ड निर्धारित कर देती है जिससे कि अंकुश लग सके कुप्रवृत्तियों पर यही है। देव और असुर शक्तियों के बीच चलने वाला निरंतर संग्राम। सूर्य की किरणें अत्यंत ही घातक हैं परन्तु ब्रह्म शक्ति के चलते उनकी भी हिम्मत नहीं है कि वे पृथ्वी पर घातक रूप में पैर रख सकें। उन्हें भी माता गायत्री के अनुसार ही कोमल रूप में पृथ्वी पर उतरना पड़ता है। इस पृथ्वी पर प्रत्येक शक्ति को अमृतमयी रूप में उतरने की इजाजत है अर्थात् शक्ति का वह स्वरूप जो कि जीवन के लिए उत्पादक एवं लाभप्रद हो। बस इसी मातृमयी शक्ति के कारण ही तो बालक नौ महीने स्त्री के गर्भ में रह पाता है। ब्रह्मर्षि सदैव मातृ शक्ति के उपासक होते हैं। प्रत्येक तत्व में, प्रत्येक जीव में माता के भाव देखते हैं इसलिए वे चारों ओर से पूर्ण सुरक्षित, कवचित और सुसज्जित होते

हैं। जिस प्रकार माता अपने शिशु की हर तरफ से पूरी देखभाल करती है उसी प्रकार ब्रह्मर्षियों की प्रत्येक आवश्यकता माता बिना बताए ही स्वतः पूर्ण कर देती है। बालक के एक रूदन पर माता के स्तनों से दुग्ध की धारा फूट पड़ती है, वह स्वयं भूखी रह सकती है परन्तु बालक के लिए येन-केन-प्रकारेण भोजन उपलब्ध करा देती है। ब्रह्मत्व धारण करने का एकमात्र उपाय, अनुष्ठान एवं संकल्प है मातृ शक्ति की पूर्ण तन्मयता के साथ उपासना, आराधना एवं कृपा की प्राप्ति। यही रहस्य जब विश्वामित्र ने समझा तब जाकर वह ब्रह्मर्षि बन पाये। गायत्री मंत्र क्या है? सीधी सी बात है वह परम ब्रह्माण्डीय, परम आदि माता का स्तुतिगान ही है। ब्रह्मविद्या के अंतर्गत क्या नहीं आता है? ब्रह्मज्ञानी चाहें तो बैठे-बैठे हजारों मील दूर की घटना को देख सकते हैं कहीं भी प्रकट हो सकते हैं। ब्रह्माण्ड में कहीं भी विचरण कर सकते हैं, किसी भी रोगी को दो मिनट में स्वस्थ कर सकते हैं, मनचाहा पदार्थ अपनी इच्छानुरूप एक क्षण में प्राप्त कर सकते हैं, ब्रह्माण्ड के गूढ़ से गूढ़ रहस्यों को एक साथ देख सकते हैं, आत्मसात कर सकते हैं, किसी भी विषय पर घण्टों बोल सकते हैं, लीला भी कर सकते हैं, माया भी फैला सकते हैं, आशीर्वाद भी प्रदान कर सकते हैं, वरदान भी दे सकते हैं, दीक्षा संस्कार भी सम्पन्न कर सकते हैं। जिसने खुद कायाकल्प किया होगा वही तो कायाकल्प करायेगा। जिसके अंदर स्वयं के दुग्ध का उत्पादन होगा वही तो दुग्धपान करायेगा। वृक्ष ही आपको प्राणवान प्रदान करते हैं। जब प्रणवायु बनेगी तभी तो आपको प्राणवायु प्रदान करेंगे। प्रदान करने का खेल मातृ शक्ति का परिचायक है। मातृत्व के रस से परिपूर्ण मस्तिष्क ही मातृ शक्ति का प्रसार करेगी। जो स्वयं प्रेम विहीन होगा मातृत्व विहीन होगा, वह तो सिर्फ हिंसा, ताण्डव एवं दूसरों की आँखों में आँसू ही लायेगा। माता की गोद में बालक हँसने लगता है, मुस्कान बिखेरता है। ठीक इसी प्रकार आदि शक्ति माँ भगवती की गोद में खेल रहा बालक किस प्रकार की अमृतमयी मुस्कान बिखरेगा इसे आप स्वयं ही समझ सकते हैं। ब्रह्मविद्या प्राप्त करने के लिए नाना प्रकार के जतन करने की जरूरत नहीं है बस सिर्फ मातृत्व की शरण में रहिए, मातृत्व तुल्य व्यक्तित्व बनिए, बालक के समान अपने आपको समेटिए और मुस्कान बिखेरिए यही है गायत्री शक्ति का रहस्य।

समस्या समाधान

जीवन पथ पर कई ऐसे मोड़ आते हैं जब विपरीत परिस्थितियों के कारण मनुष्य बहुत कुछ चाहकर भी नहीं कर पाता। कदम-कदम पर तमाम बाधाओं का सामना करना पड़ता है। अनेकों नकारात्मक अदृश्य शक्तियाँ परेशान करती हैं, व्यापार व्यवसाय में हानि होने लगती है।

क्या आप भी किसी समस्या से परेशान हैं ?

यदि आपको व्यापार में हानि हो रही है, शत्रु आप पर हावी हो रहे हैं, आपकी इच्छा होते हुये भी विवाह नहीं हो रहा है, मानसिक रूप से परेशान हैं या फिर तंत्र प्रयोग से ग्रसित हैं तो आपको परेशान होने की जरूरत नहीं है।

उठाइये अपनी कलम और हमें अपनी समस्या लिख भेजिए, हम उसका समाधान निःशुल्क करेंगे। पत्र के साथ अपना पासपोर्ट साइज का फोटो, पूरा नाम, पिता का नाम, गोत्र जन्म की तारीख, समय, जन्म स्थान तथा तीन रुपये के टिकिट युक्त लिफाफे पर अपना पूरा पता पिन (कोड सहित) स्पष्ट एवं सुवाच्य अक्षरों में लिखकर अवश्य भेजें। लिफाफे के अभाव में पत्रोत्तर की अपेक्षा न करें।

हमारा पता

समस्या समाधान

साधना सिद्धि विज्ञान

फ्लेट नं. 1,2 मिनाल व्यू-॥ पंजाबी बाग भोपाल

दूरभाष : (0755) 576346, 591143

निःशुल्क अनुष्ठान एवं हवन

साधना सिद्धि विज्ञान संस्था द्वारा प्रति सप्ताह जनकल्याण के लिये पूर्ण वैदिक विधि से हवन एवं अनुष्ठान का कार्यक्रम सम्पन्न किया जाता है।

अगर आप जीवन में किसी भी प्रकार की समस्या से ग्रसित हैं तो अपना नाम, पिता/पति का नाम, गोत्र आदि हमें लिखकर भेज दें।

आपके कल्याण के लिये संस्था द्वारा निःशुल्क हवन व अनुष्ठान किया जायेगा।

हमारा पता

समस्या समाधान

साधना सिद्धि विज्ञान

फ्लेट नं. 1,2 मिनाल व्यू-॥ पंजाबी बाग भोपाल

दूरभाष : (0755) 576346, 591143

उलझा साधना

एक उड़ते हुए पक्षी को बहेलिया दाने डालकर फँसाता है। पक्षी के पास भी मस्तिष्क है और बहेलिया के पास भी मस्तिष्क है। बहेलिया का मस्तिष्क मानव मस्तिष्क है। वह अपने मस्तिष्क की क्षमता से ही पक्षी के निवास स्थान का पता लगा लेता है, छुपकर जाल लगाता है आकर्षित करने के लिए दाने भी बिखेर देता है कहने का तात्पर्य यह है कि एक साथ बहेलिया अपने मस्तिष्क से वशीकरण, उच्चाटन, मोहन इत्यादि क्रियायें सम्पन्न कर पक्षी को फँसा देता है। मारण भी करता है, उड़ते हुए पक्षी को पकड़कर उसके पर काट दो बस पक्षी मर गया जब उड़ ही नहीं सकता तो भला किस बात का पक्षी। जो उड़ता है वही पक्षी कहलाता है। पक्षी की ताकत ही उड़ने में है। सीधी सी बात है ज्यादा ताकतवर, ज्यादा बुद्धिमान, ज्यादा विकसित मस्तिष्क ने कम प्रज्ञावान मस्तिष्क पर काबू कर लिया। मारण का मतलब यह नहीं है कि शरीर को समाप्त कर दो बल्कि ऐसा कर दो कि शरीर के होने न होने में कोई फर्क नहीं पड़े इसे कहते हैं उलझा देना, जाल में फँसा देना। ऐसा सब जगह होता है। मानों या ना मानो। आपके कार्यालय में आपके साथ काम करने वाले अफसर या कर्मचारी आपको झूठे केसों में उलझा देते हैं। आपका जीना मुश्किल कर देते हैं, लोग सस्पेंड हो जाते हैं, व्यर्थ में स्थानांतरित हो जाते हैं। कुल मिला-जुलाकर आप एक विकट चक्रव्यूह में उलझ जाते हैं। यह सब मारण के अंतर्गत आता है। यह सब कुव्यवस्थाएँ मनुष्य को बर्बाद कर देती हैं। झूठे मुकदमें, झूठे लांछन, चरित्रहनन, पुलिसथना, घर में विद्रोह, व्यर्थ की शत्रुता इत्यादि-इत्यादि आजकल अधिकांशतः मनुष्यों को झेलनी पड़ रही है। यह सब तंत्र मार्ग के द्वारा सम्पन्न होता है। कहीं-कहीं कर्मफल या पूर्व जन्मकृत सम्बन्धों के कारण भी ऐसा ही मनुष्य को झेलना पड़ सकता है। अधिकांशतः व्यक्ति समस्या का स्रोत ही पता नहीं लगा पाते। वे उस मस्तिष्क को ही नहीं ढूँढ पाते हैं जो उनके

खिलाफ अप्रत्यक्ष रूप से निरंतर क्रियाशील हो इस प्रकार की गतिविधियाँ फैला रहा है। पीड़ित खुद भी साधनात्मक नहीं होते हैं। श्रेष्ठ गुरु परम्परा से नहीं जुड़े होते हैं इसलिए उलझ जाते हैं। साधनाएँ क्या हैं? साधनाएँ एक जीवन का विषय नहीं है। साधक एक जीवन में कोई व्यक्ति नहीं बन सकता। मनुष्य के शरीर त्यागने के पश्चात् केवल साधना की शक्ति ही आत्मा के साथ गमन करती है अगर किसी एक जन्म में आपने गायत्री साधना सम्पन्न की है तो फिर दूसरे जन्म में आपको सिर्फ उसका पुरश्चरण करना पड़ेगा पुनः उस शक्ति को चेतना पक्ष में उदित करने के लिए। इसका सीधा सा उदाहरण है जैसे ही आप रामायण या महाभारत जैसे ग्रंथ पढ़ते हैं आपको ऐसा लगता है जैसे कि आप मात्र इन्हें नवीनीकरण कर रहे हैं याद कर रहे हैं अर्थात् कहीं मन के कोने में ऐसा लगेगा कि आप इन्हें पढ़ चुके हैं। कुण्डलिनी जागरण की प्रक्रिया भी ऐसी ही है इसीलिए मस्तिष्क या चेतना की सक्रियता सभी मनुष्यों में अलग-अलग दिखाई पड़ती है। गुरु जब शिष्य के ऊपर हुए प्रहार को काटता है तो वह काटी गई शक्ति को एक शृंखला तरीके से ऊपर की तरफ फेंकता है। गुरु के बाद परमेष्ठि गुरु, परमेष्ठि गुरु के बाद दादा गुरु, दादा गुरु के पश्चात् परम परमेष्ठि गुरु फिर आदि गुरु फिर महादेव फिर शिव तत्पश्चात् अलख निरंजन और इसके पश्चात् आदि पुरुष तक तीव्र मारण, मोहन, उच्चाटन प्रयोग करते रहते हैं और इस प्रकार शिष्य जिसे मृत्यु को प्राप्त होना चाहिए था वह सिर्फ सुई के बराबर चुभन ही झेलता है। यही विधान है सृष्टि का एवं गुरु परम्परा का। तक्षक बाण से मृत्यु अर्जुन की हो जाती। कृष्ण ये जानते थे उन्होंने रथ को थोड़ा सा झुका दिया कर्ण के द्वारा छोड़ा गया यह शस्त्र अर्जुन के मस्तक पर प्रहार न करके उसके मुकुट को ही गिरा पाया। नारियल के पानी तक पहुँचने के लिए ऊँचाई पर लगे नारियल का फल तोड़ना होमा फिर जटाजूट हटानी होमी फिर मजबूत खोल को भेदना होमा उसके पश्चात्

नारियल का गूदा भी आयेगा तब कहीं जाकर नारियल का अमृतमयी पानी प्राप्त होगा। अमृतमयी पेय प्राप्त करना भी आसान नहीं है। नारियल के वृक्ष कितने ऊँचे होते हैं। उन पर चढ़ने की कला भी हर किसी के वश की बात नहीं है। अतः मारण, मोहन और उच्चाटन जैसी तीक्ष्ण क्रियाएँ सम्पन्न करने के लिए मस्तिष्क भी अत्यधिक साधनात्मक होना चाहिए। मुख्य रूप से तीन प्रकार के शरीर हैं पहला स्थूल दूसरा कारण और तीसरा सूक्ष्म। स्थूल शरीर बाहरी शरीर है इसका गमन सभी करते हैं। इसकी क्रियाशीलता सर्वविदित है। इस पर नकारात्मक क्रियाओं के लिए तंत्र की जरूरत ही नहीं है। यह तो पशुतुल्य क्रियाओं से भी प्रभावित हो सकता है। दूसरा है कारण शरीर। आप यहाँ से बैठकर अपने कारण शरीर के द्वारा फोन पर हजारों किलोमीटर दूर क्रियाशील हो सकते हैं। आप अपनी वाणी से कहीं भी निर्देश, आदेश या क्रियाएँ सम्पन्न करवा सकते हैं। कारण शरीर को तंत्र की जरूरत होती है। उचित माध्यम भी कारण शरीर को चाहिए होते हैं। कारण शरीर की क्रियाशीलता के लिए स्थूल शरीर का गमन करना आवश्यक नहीं है। आजकल अधिकांशतः मनुष्य यंत्रों के द्वारा अपने कारण शरीर को पृथ्वी के किसी भी कोने पर सक्रिय कर सकते हैं। दूरभाष हो, दूरदर्शन हो, चलचित्र हो इत्यादि-इत्यादि स्थूल माध्यम से आप कहीं भी साक्षात् रूप से सक्रिय हो सकते हैं एवं किसी भी मस्तिष्क को प्रभावित कर सकते हैं। पुस्तकें भी इसी श्रेणी में आती हैं। तीसरा है सूक्ष्म शरीर। यह अदृश्य क्रियाशीलता है। तंत्र विधान में इस शरीर को अंशात्मक या पोटेन्सी या फिर शक्तिकृत करके शुद्ध प्रकाश या ऊर्जा के रूप में स्थापित किया जाता है एवं अपनी सक्रियता से क्रियाएँ सम्पन्न करायी जाती हैं। इसी सूक्ष्म शरीर को गतिमान करने के लिए ही साधनाएँ, मंत्र जाप, पुरश्चरण, यज्ञ एवं अन्य तांत्रिक, वेदोक्त विधान सम्पन्न किए जाते हैं। दीक्षा भी सूक्ष्म शरीर के द्वारा ही सम्पन्न की जाती है। योगसाधना में दो मार्ग हैं पहला दक्षिण मार्ग तो दूसरा वाम मार्ग। दक्षिण मार्ग अर्थात् सात्त्विक मार्ग इस मार्ग में ईश्वरीय शक्तियों को अपनी आत्मा के चुम्बकत्व के द्वारा आकर्षित कर शरीर के अन्नमय, प्राणमय, ज्ञानमय, चेतनामय कोषों में स्थापित किया जाता है। शरीर में विभिन्न कमल दलों, चक्रों, उपचक्रों को जागृत किया जाता है।

दूसरा मार्ग है वाम मार्ग। इस मार्ग का आधार है दूसरे शरीरों के शक्ति भण्डार को येन-केन-प्रकरणे हरण-अपहरण एवं बलात् या गुप्त रूप से हस्तांतरित करना। कई बार तांत्रिक सामने वाले की शक्ति इस प्रकार चूस लेते हैं जैसे कि भौरा पुष्प में से प्रकरंद चूस ले जाता है और व्यक्ति निष्क्रिय हो जाता है, कुन्द हो जाता है। जोंक आपके शरीर से चिपककर आपको बिना पता चले ही आपका रक्त चूस लेती है। शरीर की मृत्यु के पश्चात् भी मनुष्य के मस्तिष्क की अनेकों ग्रंथियों एवं उपचक्रों में लगभग सप्ताह भर तक चेतना बनी रहती है इसीलिए श्मशान भूमि में अघोरी या तांत्रिक इन मुर्दों पर शव साधना करते हुए इनकी शक्ति चूसते रहते हैं। ऐसे अघोरी, कापालिक, रक्तबीज, बैतालिक, ब्रह्मराक्षस, पुरुष, डाकिनी, शकिनी, सर्वसूत्र आदि स्त्रियाँ अब भी जहाँ-तहाँ देखे जा सकते हैं। शक्तियों का तो अपहरण होता ही है। आप जिन्दगी भर मेहनत करके पैसा एकत्रित करते हैं और दूसरे ही क्षण ठग या चोर रूपी मस्तिष्क नाना प्रकार के लुभावनी परियोजना बनाकर आपको चूना लगा देते हैं। तांत्रिक साधनाएँ बिना गुरु के सम्पन्न नहीं करना चाहिए नहीं तो अनिष्ट निश्चित है। तांत्रिक साधनाएँ अत्यंत ही गोपनीय होती हैं। तंत्र के द्वारा ऐसे चमत्कारिक परिणाम प्राप्त किए जा सकते हैं जो कि आप वर्षों की मेहनत के पश्चात् भी प्राप्त नहीं कर सकते। तांत्रिक साधना का स्रोत केवल माँ काली ही हैं। गुरुओं को तो तंत्र साधनाएँ सम्पन्न करनी ही पड़ती हैं अन्यथा इतने शिष्यों के विशाल परिवार की रक्षा करना सम्भव नहीं है। दुष्ट शक्तियों की इस संसार में कमी नहीं है। दुष्टों के साथ दुष्टता से ही निपटा जाता है। दुष्ट शक्तियों के पर कतरने पड़ते हैं, किसी दुष्ट तांत्रिक के कारण और सूक्ष्म शरीर को निष्क्रिय कर दो वह कहीं का नहीं रहेगा। जीते जी मर जायेगा। राम का उल्टा होता है मरा अर्थात् राम जीवनदायी भी है उनके लिए जो सनातनी है, प्रकृति के नियम से चलते हैं परन्तु दूसरी ओर वह मृत्यु भी प्रदान करते हैं राक्षसों को। विष से जीवनदायी औषधि भी बनती है एवं मृत्यु भी प्राप्त होती है। हाथ से आप आशीर्वाद भी दे सकते हैं एवं गुला भी दबा सकते हैं। अकेले दक्षिण मार्गीय होने से काम नहीं चलेगा। सभी को वाममार्गीय होना पड़ता है। राम, कृष्ण, विष्णु, परशुराम, शिव, विश्वामित्र इत्यादि-इत्यादि सभी अवतारी

शक्तियों के हाथ मानव वध के रक्त से रंगे हुए हैं। सभी ने अनेकों दुष्टों का वध किया है हनुमान ने न जाने कितने राक्षसों का रक्त बहाया है। काली, दुर्गा से लेकर सभी देवी शक्तियों ने साक्षात् मृत्यु प्रदान की है अनेकों विप्लवकारी राक्षसों और मनुष्यों को। जिस विश्वामित्र ने गायत्री जैसे सात्विक मंत्र का प्रादुर्भाव किया है उसने भी अनेकों मानव वध किए हैं। बुद्ध के बुद्धत्व का प्रचार-प्रसार भी अशोक बिम्बसार और अजात शत्रु जैसे राजाओं ने किया है। ये सबके सब एक जमाने में घोर योद्धा रहे हैं। मानव रक्त की गंध इनमें रच बस गई थी। जैन धर्म के तीर्थंकर भी युद्ध कर चुके हैं अपने जीवन में। अतः सभी गुरुओं को, सभी साधकों को मारण, मोहन, उच्चाटन, वशीकरण की क्रियाएँ इत्यादि अवश्य ही आनी चाहिए। यही सफलता का रहस्य है। एक पक्ष से कुछ भी नहीं होगा। युद्ध तो निश्चित है। जिस सात्विक गायत्री मंत्र से सात्विक शक्तियों का जीवन में प्रादुर्भाव होता है उसे ही उल्टा पढ़ने से उसमें मौजूद सभी दैव शक्तियाँ युद्ध की ओर अग्रसर होती हैं एवं शत्रु का सम्पूर्ण विनाश कर देती हैं। उल्टी गायत्री को अनुलोप जप कहते हैं यही आग्नेयास्त्र है।

‘त या द चो प्र नः यो यो धि हि म धी स्य व दे
गो भ ण्यं रे र्व तु वि त्स त स्वः वः भुभू ॐ’
यह मंत्र आग्नेयास्त्र है। इस विद्या का कुछ परिचय नीचे देखिए

अग्नेयास्त्रस्य जानाति विसर्गादान कर्मणि।

यः पुमान् गुरुणा शिष्टस्तस्याधीनं जगत्त्रयम्॥

जो पुरुष इस आग्नेयास्त्र को छोड़ने तथा खींचने की विधि जानता है और जो गुरु द्वारा शिक्षित है, उसके अधिकार में त्रैलोक्य है।

आग्नेयास्त्रधिकारी स्यादविधानमुदीर्यते।

आग्नेयास्त्रमिति प्रोक्त विलोम पठितो मनुः॥

और वह आग्नेयास्त्र का अधिकारी हो जाता है। अब आग्नेयास्त्र की प्रयोग विधि कहते हैं। आग्नेयास्त्र प्रतिलोम और अनुलोम दो प्रकार से कहा गया है।

क्षीरद्रु माणामाज्येन, हविषात्रैघृःतान्वितैः।

चतुश्चत्वारिंशदाढ्यं शतुःशत समन्वितम्॥

दूध वाले वृक्षों की समिधाओं से, घृतयुक्त जौ की सामग्री से चार सौ चवालीस युक्त-

चतुः सहस्रं जुहुयादर्चिते हव्यषाहने।

मण्डले सर्वतो भद्रे षट्कोणांकित कार्णिके॥

चार हजार आहुति प्रदीप्त अग्नि में दे, और सर्वतो भद्र यंत्र बनाकर उसके अंतर्गत छः कोणवाला यंत्र बनावे।

पूर्वोक्ता एवमुत्पाद्या, मन्त्रास्य परिकीर्तिताः।

प्रतिलोम कुर्यादस्य, षडङ्गानि प्रकल्पयेत्॥

प्रतिलोम कर्म में पूर्वोक्त ऋष्यादि तथा षडङ्गन्यास आदि को प्रतिलोम क्रम से (उल्टे) करें।

वर्णान्यास पद न्यास, विदध्यात्प्रतिलोमतः।

ध्यान्भेदान्विजानीयाद् गुर्वीदेशान्त चान्यथा॥

वर्णन्यास, पदन्यास, आदि को भी प्रतिलोम क्रम से करें। ध्यान भेदों को गुरु आज्ञा से करें अन्यथा न करें।

पूर्ववज्रपः क्लृप्तिः स्याज्जुहुयान्पूयात्पूर्वसंख्यया।

पञ्चगव्य सुपक्वेन, चरुणा तस्य सिद्धये॥

पूर्वोक्त संख्यानुसार जप करें और पञ्चगव्य युक्त अच्छे प्रकार के चरु द्वारा जप सिद्धि के लिये पूर्वोक्त संख्यानुसार आहुति दें।

अर्चनं पूर्ववत्कुर्याच्छक्तिस्तु प्रतिलोमतः।

सर्वत्र देशिकः कुर्यात् गायत्र्या द्विगुणं जपम्॥

प्रतिलोमता से शक्तियों का पूजन पूर्ववत् करे और सर्वत्र गायत्री का दूना जप करें।

क्रूरकर्माणि कुर्वीत, प्रतिलोमविधानतः।

शान्तिकं पौष्टिकं कर्म, कर्तव्यं अनुलोमतः॥

प्रतिलोम के विधान से जपादि क्रूर कर्मों की सिद्धि के लिये करें, और शान्तिमय एवं पुष्टिदायक कर्मों की सिद्धि के लिये अनुलोम के विधान से करें।

प्रयोगकाले प्रजपेदष्टौ, पादान्विलोमतः।

शोधितो जायते पश्चर मन्त्रोयं विधिनामुना॥

विलोम के प्रयोग काल में मंत्र के आठों पदों को प्रतिलोम क्रम से पढ़ें और अनुलोम कर्म में अनुलोमतः आठों पदों को पढ़ें क्योंकि मंत्र पढ़ने से मन की अस्थिरता आदि दोष नष्ट हो जाते हैं।

उपरोक्त विधि एक संकेत मात्र है उसके साथ में एक विस्तृत कर्मकाण्ड एवं गुप्त साधना विधि है उस सबका रहस्य गुप्त ही रखा जाता है क्योंकि उन बातों का सार्वजनिक प्रकटीकरण करना सब प्रकार से निषिद्ध है।

गायत्री गीता

गायत्री के सम्बन्ध में प्राचीन ग्रंथों में सुविस्तृत वर्णन है। अनेक ग्रंथों में गायत्री के विवेचन, इतिहास, विवरण, साधन एवं माहात्म्य के सम्बन्ध में बहुत कुछ लिखा हुआ है। गायत्री महामंत्र अकेला ही इतना सारगर्भित है कि उसे समझने में कई जन्म लग सकते हैं। साथ ही उसके गर्भ में वह सभी तत्त्वज्ञान भरा हुआ है, जिसकी व्याख्या के लिए वेदशास्त्र, पुराण, इतिहास, दर्शन, उपनिषद, ब्राह्मण, अरण्यक, स्मृति, नीति एवं सूत्र ग्रंथों की रचना की गई है। आगे आपके लिए गायत्री विद्या से सम्बन्धित विशेष रूप से संक्षिप्त गायत्री गीता की प्रस्तुति की जा रही है जिससे यह जाना जा सकेगा कि गायत्री विद्या का कितना महत्व है और गायत्री विद्या कितनी अगाध है।

वेदमाता गायत्री का मंत्र छोटा सा है। उसमें 24 अक्षर हैं, पर इतने थोड़े में ही अनन्त ज्ञान का समुद्र भरा हुआ है जो ज्ञान गायत्री के गर्भ में है, वह इतना सर्वांगपूर्ण एवं परिमार्जित है कि मनुष्य यदि उसे भली प्रकार समझ ले और अपने जीवन में व्यवहार करे तो उसके लोक-परलोक सब प्रकार सुख-शान्तिमय बन सकते हैं।

यों तो गीता सम्बोधन किसी विषय के मर्म की व्याख्या के सन्दर्भ में प्रयुक्त होने लगा है। गायत्री का संदेश आध्यात्मिक एवं सांसारिक दोनों दृष्टियों से अत्यधिक अर्थपूर्ण एवं उपयोगी है। गायत्री गीता में प्रणव 'ॐ' व्याहृतियों-भूवर्धः स्वः सहित गायत्री मंत्र के नौ शब्दों में सन्निहित मर्म को प्रकट करने का प्रयास किया गया है। यह ज्ञान इतना परिमार्जित एवं महत्वपूर्ण है कि यदि मनुष्य

इसे भली प्रकार समझ ले और जीवन-व्यवहार में उतार ले तो लोक-परलोक दोनों में सुख-शान्ति का लाभ पा सकता है। नीचे संक्षिप्त सा गायत्री मंत्रार्थ दिया जाता है यही गायत्री गीता है।

ओमित्येव सुनामधेयमनघं विश्वात्मनो ब्राह्मणः,
सर्वेष्वेव हि तस्य नामसु असौरेतत्प्रधानं मतम्।
यं वेदा निगदन्ति न्याय निरतं श्रीसच्चिदानन्दकम्,
लोकेशं समदर्शिनं नियमनं चाकारहीनं प्रभुम्॥

जिसको वेद न्यायकारी, सच्चिदानन्द, सर्वेश्वर, समदर्शी, नियामक, प्रभु और निराकार कहते हैं, जो विश्व में आत्मा रूप से उस ब्रह्म के समस्त नामों में श्रेष्ठ नाम, पाप-रहित, पवित्र और ध्यान करने योग्य है- वह 'ॐ' ही मुख्य नाम माना गया है।

परमात्मा को प्राप्त करने और प्रसन्न करने का मार्ग उसके नियमों पर चलना है। वह निन्दा-स्तुति से प्रभावित नहीं होता, वरन् कर्मों के अनुसार फल देता है। परमात्मा को सर्वत्र व्यापक समझकर गुप्त रूप से भी पाप नहीं करना चाहिए। प्राणियों की सेवा करना परमात्मा की ही पूजा करना है। परमात्मा को अपने अंतर में अनुभव करने से आत्मा पवित्र होती है और सत् चैतन्यता तथा आनन्द की अनुभूति होती है।

भूर्वे प्राण इति ब्रुवन्ति मुनयो वेदान्तपारं गताः,
प्राणः सर्वं विचेतनेषु प्रसृतः सामान्य रूपेण च।
एतेनैव विसिद्ध्यते हि सकलं नूनं समानं जगत्,
द्रष्टव्यः सकलेषु जन्तुषु जनैर्नित्यं ह्यासुश्चात्मवत्॥

मुनि लोग प्राण को 'भूः' कहते हैं। यह प्राण समस्त प्राणियों में सामान्य रूप से फैला हुआ है इससे सिद्ध है कि यहाँ सब समान हैं। अतएव सब मनुष्य और प्राणियों को अपने समान ही देखना चाहिए।

अपने समान सबको कष्ट होता है, इसलिए किसी को सताना नहीं चाहिए। दूसरों से वही व्यवहार करना चाहिए, जो हम दूसरों से अपने लिये चाहते हैं, सबमें समत्व की दृष्टि रखनी चाहिए। कुल, वंश, वेप, जाति, समुदाय, स्त्री, पुरुष आदि भेदों के कारण किसी को नीच-ऊँच, छोटा-बड़ा नहीं समझना चाहिए। उच्चता और नीचता का कारण तो भले-बुरे कर्म ही हो सकते हैं।

**भुवो नाशो लोके सकल विपदां च निगदितः,
कृतं कार्यं कर्तव्यमिति मनसा चास्य करणम्।
फलाशां मर्त्या ये विदधति न वै कर्मनिरताः,
लभन्ते नित्यं ते जगति हि प्रसादं सुमनसाम्॥**

संसार में समस्त दुःखों का नाश ही 'भुवः' कहलाता है। कर्तव्य-भावना से किया गया कार्य ही कर्म कहलाता है। परिणाम में सुख की अभिलाषा को छोड़कर जो कार्य करते हैं, वे मनुष्य सदा प्रसन्न रहते हैं।

मनुष्य का अधिकार कार्य करना है, फल देने वाला ईश्वर है। अमुक, वस्तु प्राप्त होने पर ही सुख माना जाय, ऐसा सोचने की बजाय ऐसा सोचना चाहिए कि कर्तव्य-पालन ही हमारे लिये आनन्द का सर्वोत्तम केन्द्र है। जो अपने कर्तव्य कर्म को ही लक्ष्य मान लेता है, वह कर्मयोगी हर घड़ी सुखी रहता है, उस तृष्णावान् को सदा सत्कर्म करते रहना चाहिए, गीता के कर्मयोग का यही तत्व है।
**स्वरेषो वै शब्द निगदति मनः स्थैर्य-करणम्,
तथा सौख्यं स्वास्थ्यं ह्युपदिशति चित्तस्य लोलताम्।
निमग्नत्वं सत्यव्रतसरसि चाचक्षति उत,
त्रिधा शान्तिं ह्येतां भुवि च लभते संयमरतः॥**

स्वः यह शब्द मन की स्थिरता का निर्देश करता है।

चंचल मन को सुस्थिर और स्वस्थ रखो, यह उपदेश देता है। सत्य में निमग्न रहो, यह कहता है। इस उपाय से संयमी पुरुष तीनों प्रकार की शांति को प्राप्त करते हैं।

अनिश्चित परिस्थिति प्राप्त होने पर प्रायः मनुष्य शोक, दुःख, क्रोध, द्वेष, दीनता, निराशा, चिन्ता, भय, बेचैनी आदि से उद्विग्न होकर अपना मानसिक संतुलन खो बैठते हैं और अनुकूल परिस्थिति प्राप्त होने पर अहंकार, मद, उद्वेगता, खुशी में फूलकर, अस्वाभाविक आचरण करना, इतराना, अपव्यय, शेखी आदि से ग्रस्त हो जाते हैं। ये दोनों ही स्थितियाँ एक प्रकार के नशे या ज्वर हैं। ये विवेक को अन्धा कर देते हैं जिससे विचार और कार्यों की उचित शृंखला नष्ट-भ्रष्ट हो जाती है और आदमी अन्धा तथा वावला बन जाता है। इन सत्यानाशी तूफानों से आत्मा की रक्षा करने के लिये मन को स्थिर, संतुलित, स्वस्थ एवं सत्यप्रेमी बनाना चाहिए, तभी मनुष्य को आत्मिक, बौद्धिक तथा शारीरिक शांति मिल सकती है।

**ततो वै निष्पत्तिः स भुवि मतिमान् पण्डितवरः,
विज्ञानन् गुह्यं यो मरण जीवनायोस्तदखिलम्।
अनन्ते संसारे विचरति भयासक्तिरहित,
स्तथा निर्माणं वै निजगतिविधीनां प्रकुरुते॥**

तत् शब्द यह बतलाता है कि इस संसार में वही बुद्धिमान है, जो जीवन-मरण के रहस्य को जानता है। भय और आसक्ति-रहित जीवन जीता है और अपनी गतिविधियों का निर्माण करता है।

मृत्यु सदा सिर पर नाचती खड़ी रहती है। इस समय श्वास चल रही है, अगले ही क्षण बंद हो जाय, इसका क्या ठिकाना? यह सोचकर इस सुर-दुर्लभ मानव-जीवन का श्रेष्ठतम उपयोग करना चाहिए और थोड़े जीवन में क्षणिक सुख के लिये पाप क्यों किये जावें जिससे चिरकाल तक दुःख भोगने पड़ें ऐसा विचार करना चाहिए।

यदि विद्याध्ययन, समाज-सुधार, धर्म-प्रचार आदि श्रेष्ठ

कार्य करने हों तो ऐसा सोचना चाहिये कि जीवन अखण्ड है। यदि इस शरीर से वह कार्य पूरा न हो सका तो अगले में पूरा करेंगे। यह निर्विवाद है कि जो इस जीवन का सदुपयोग कर रहा है, उसे मृत्यु के पश्चात् आनन्द ही मिलेगा। परलोक, पुनर्जन्म आदि में सुख ही प्राप्त होगा, पर जो इन जीवन-क्षणों का दुरुपयोग कर रहा है, उसका भविष्य अन्धकारमय है इसलिए जो बीत चुका है, उसके लिये दुःख न करते हुए शेष जीवन का सदुपयोग करना चाहिए।

सवितुस्तु पदं वितनोति ध्रुवं,
मनुजो बलवान् सवितेव भवेत्।
विषया अनुभूति परिस्थितियो
वै सदात्मन एव गणेदिति सः ॥

सवितु यह पद बतलाता है कि मनुष्य सूर्य के समान बलवान होना चाहिए और सभी विषय तथा अनुभूतियाँ अपनी आत्मा से ही सम्बन्धित हैं, ऐसा विचारना चाहिए।

सूर्य को वीर्य और पृथ्वी को रज कहा जाता है। सूर्य की शक्ति से संसार की सब क्रियाएँ होती हैं। इसी प्रकार आत्मा अपनी क्रियाशीलता द्वारा विविध प्रकार की परिस्थितियाँ उत्पन्न करती हैं। प्रारब्ध, भाग्य, दैव आदि भी अपने प्राचीन कर्मों का ही परिपाक मात्र हैं इसलिए अपने लिये जैसी परिस्थिति अच्छी लगती है, उसी के योग्य अपने को बनाना चाहिये। अपना भाग्य-निर्माण करना हर मनुष्य के अपने हाथ में है इसलिए आत्म-निर्माण की ओर ही सबसे अधिक ध्यान देना चाहिये। बाहर की सहायता भी अपनी अतरंग स्थिति के अनुकूल ही मिलती है।

मनुष्य को तेजस्वी, बलवान, पुरुषार्थी बनना चाहिये। स्वास्थ्य, विद्या, धन, चतुरता, संगठन, यश, साहस और सत्य इन आठ बलों से अपने को सदैव बलवान बनाने का प्रयत्न करना चाहिये।

वरेण्यञ्चैतद्वै प्रकटयति श्रेष्ठत्वमनिशम्,
सदा पश्येच्छ्रेष्ठं मननमपि श्रेष्ठस्य विदधेत्।
तथा लोके श्रेष्ठं सरलमनसा कर्म च भजेत्,

तदित्थं श्रेष्ठत्वं व्रजति मनुजः शोभितगुणैः ॥

वरेण्यं यह शब्द प्रकट करता है कि प्रत्येक मनुष्य को नित्य श्रेष्ठता की ओर बढ़ना चाहिये। श्रेष्ठ देखना, श्रेष्ठ चिन्तन करना, श्रेष्ठ विचारना, श्रेष्ठ कार्य करना इस प्रकार से मनुष्य श्रेष्ठता को प्राप्त होता है।

मनुष्य वैसा ही बनता है, जैसे उसके विचार होते हैं। विचार साँचा है और जीवन गीली मिट्टी। जैसे विचारों में हम डूबे रहते हैं, हमारा जीवन उसी ढाँचे में ढलता जाता है, वैसे ही आचरण होने लगते हैं, वैसे ही साथी मिलते हैं, उसी दिशा में जानकारी रुचि तथा प्रेरणा मिलती है इसलिए यदि अपने को श्रेष्ठ बनाना है तो सदा श्रेष्ठ मनुष्यों के सम्पर्क में रहना, श्रेष्ठ पुस्तकें पढ़ना, श्रेष्ठ बातें सोचना, श्रेष्ठ घटनायें देखना, श्रेष्ठ कार्य करना आवश्यक है। दूसरों में जो श्रेष्ठतायें हों उनकी कदर करना और उन्हें अपना, श्रेष्ठता में श्रद्धा रखना ये सब बातें उन लोगों के लिए बहुत आवश्यक हैं, जो अपने को श्रेष्ठ बनाना चाहते हैं।

भर्गो व्याहरति पदं हि नितरां लोकः सुलोको भवेत्,
पापे पाप-विनाशने त्वविरतं, दत्तवधानो वसेत्।
दृष्ट्वा दुष्कृतिदुर्विपाक-निचयं तेभ्यो जुगुप्सेद्वि च,
तन्नाशाय विधीयतां च सततं, संघर्षमेभिश्च सह ॥

‘भर्गो’ यह पद बताता है कि मनुष्य को निष्पाप बनना चाहिये। पापों से सावधान रहना चाहिये। पापों के दुष्परिणामों को देखकर उनसे घृणा करे और निरन्तर उनको नष्ट करने के लिए संघर्ष करते रहें।

संसार में जितने दुःख हैं, पापों के कारण हैं। अस्पतालों में, जेलखानों में तथा अन्यत्र नाना प्रकार के कष्टों से पीड़ित मनुष्य अब के या पुराने पापों से ही दुःख भोगते हैं। नरक में भी पापी ही त्रास पाते हैं। संत और परोपकारी पुरुष दूसरों के पापों का बोझ अपने सिर पर लेकर दुःख उठाते हैं और उन्हें शुद्ध करते हैं। चाहे दूसरों का दुःख कोई संत सहे, चाहे पापी स्वयं सहे, हर हालत में दुःखों का कारण पाप ही है इसलिए जिन्हें दुःख का भय है और

सुख की इच्छा है, उन्हें चाहिए कि पापों से बचें और भूतकाल के पापों के लिये प्रायश्चित्त करें। पापों से सावधानी रखना और उन्हें भीतर-बाहर से नष्ट करने के लिये संघर्ष करना यह बहुत बड़ा पुण्य कार्य है, क्योंकि इससे अगणित प्राणी दुःखों से छुटकारा पाकर सुखी बनते हैं। निष्पापता में ही सच्चे आनन्द का निवास है।

देवस्येति तु व्याकरोत्यमरतां मर्त्योऽपि संप्राप्यते, देवानामिव शुद्धदृष्टि करणात् सेवोपचाराद् भवि। निःस्वार्थ परमार्थ कर्मकरणात् दीनाय दानात्तथा, बाह्याभ्यन्तरमस्य देवभुवनं संयुज्यते चैव हि॥

‘देवस्य’ यह पद बतलाता है कि मरणधर्मा मनुष्य भी अमरता अर्थात् देवत्व की प्राप्ति कर सकता है। देवताओं के समान शुद्ध दृष्टि रखने से, प्राणियों की सेवा करने से, परमार्थ कर्म करने से, निर्बलों की सहायता करने से मनुष्य के भीतर और बाहर देवलोक की सृष्टि होती है।

परमात्मा की बनाई हुई इस पवित्र सृष्टि में जो कुछ है, पवित्र और आनन्दमय ही है। इस सृष्टि को, संसार को, प्रसन्नता की दृष्टि से देखना, उसमें मनुष्यों द्वारा उत्पन्न की गयी बुराईयों को दूर करना और ईश्वरीय श्रेष्ठताओं को विकसित करना, प्रचलित करना देवकर्म हैं। इस देव-दृष्टि को धारण करने से मनुष्य देवता बन सकता है। जो अपने को शरीर न समझ कर आत्मा अनुभव करता है, वह अमर है। उसके पास से मृत्यु का भय दूर हो जाता है। प्राणियों को प्रेम और आत्मीयता की पवित्र दृष्टि से देखना, अपने आचरणों को पवित्र रखना, अपने से निर्बलों को ऊँचा उठाने के लिये अपनी शक्ति का दान करना यह देवत्व है। इन गुण वालों के लिये यह भूलोक भी देवलोक के समान आनन्दमय बन जाता है।

धीमहि भवेम सर्वविधं शुचिं,

शक्तिचयं वयमित्युपदिष्टाः खलु।

नो मनुजो लभते सुखशांति-

मनेन विनेति वदन्ति हि वेदाः॥

‘धीमहि’ का आशय है कि हम सब लोग हृदय में सब प्रकार की पवित्र शक्तियों को धारण करें। वेद कहते हैं कि इसके बिना मनुष्य, सुख-शांति को प्राप्त नहीं होता।

संसार में भौतिक शक्तियाँ अनेक हैं। धन, पद, वैभव, राज्य, शरीर-बल, संगठन, शस्त्र, विद्या, बुद्धि, चतुरता, कोई विशेष योग्यता आदि के बल पर लोग ऐश्वर्य और प्रशंसा प्राप्त कर लेते हैं, पर यह अस्थायी होती है। इनसे सुख मिल सकता है, पर वह छोटे-मोटे आघात में ही नष्ट भी हो सकता है। स्थायी सुख आध्यात्मिक पवित्र गुणों में है, जिन्हें दैवी सम्पदायें या दिव्य शक्तियाँ भी कहते हैं। निर्भयता, विवेक, स्थिरता, उदारता, संयम, परमार्थ, स्वाध्याय, तपश्चर्या, दया, सत्य, अहिंसा, नम्रता धैर्य, अद्रोह, प्रेम, न्यायशीलता, निरालस्य आदि दैवी गुणों के कारण जो सुख मिलता है उसकी तुलना किसी भी भौतिक सम्पदा से नहीं हो सकती इसलिए अपनी दैवी सम्पदाओं का कोष बढ़ाने का प्रयत्न करते रहना चाहिये।

धियो मत्योन्मथ्यागमनिगममन्त्रान् सुमतिमान्, विजानीयात्तत्त्वं विमल नवनीतं परमिव। यतोऽस्मिन् लोके वं संशयगत विचार-स्थलशते, मतिः शुद्धैवाञ्छा प्रकटयति सत्यं सुमनसे॥

‘धियो’ पद बतलाता है कि बुद्धिमान को चाहिये कि वह वेद-शास्त्रों को बुद्धि से मथ कर मक्खन के समान उत्कृष्ट तत्व को जाने क्योंकि शुद्ध बुद्धि से ही सत्य को जाना जाता है।

संसार में अनेक विचारधारायें हैं, उनमें से अनेकों आपस में टकराती भी हैं। एक शास्त्र के सिद्धांत दूसरे शास्त्र के विपरीत भी बैठते हैं। इसी कारण एक विद्वान् या ऋषि के विचार दूसरे विद्वान् या ऋषि के विचारों से पूर्णतया मेल नहीं खाते। ऐसी स्थिति में विचलित न होना चाहिये। देश, काल, पात्र और परिस्थिति के अनुसार जो बात एक समय बिल्कुल ठीक होती है, वही भिन्न परिस्थितियों में गलत भी हो सकती है। जाड़े के दिनों

में जो कपड़े लाभदायक होते हैं, उनसे गर्मी में काम नहीं चलाया जा सकता। इसी प्रकार एक परिस्थिति में जो बात उचित है, वह दूसरी परिस्थिति में जो बात उचित है, वह दूसरी परिस्थिति में अनुचित हो जाती है इसलिये किसी ऋषि, विद्वान, नेता व शास्त्र की निन्दा न करते हुए हमें उसमें से वही तत्व लेने चाहिये, जो आज की स्थिति के अनुकूल हैं। इस उचित-अनुचित का निर्णय तर्क, विवेक और न्याय के आधार पर वर्तमान परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए करना चाहिये।

यो नो वास्ति तु शक्तिसाधनचयो न्यूनाधिकश्चाथवा,
भागं न्यूनतमं हि तस्य विदधेमात्मप्रसादाय च।
यत्पश्चादवशिष्टभागमखिलं त्यक्त्वा फलाशं हृदि,
तदधीनेष्वभिलाषवस्तु वितरये शक्तिहीनाः स्वयम् ॥

‘यो नः’ पद का तात्पर्य है कि हमारी जो भी शक्तियाँ एवं साधन हैं, चाहे वे न्यून हों अथवा अधिक हों, उनके न्यून से न्यून भाग को ही अपनी आवश्यकता के लिये प्रयोग में लावें और शेष को निःस्वार्थ भाव से अशक्त व्यक्तियों को बाँट दें।

भगवान् ने मनुष्य को ज्ञान, बल तथा वैभव एक अमानत के रूप में इसलिये दिये हैं कि इन विभूतियों से सुसज्जित होकर अपने को मान, यश, सुख तथा पुण्य का श्रेय प्राप्त करें परन्तु इनका लाभ अधिक से अधिक मात्रा में, दूसरों को उठाने दें। अपने ऐश आराम, भोग, संचय या अहंकार की पूर्ति में इनका उपयोग नहीं होना चाहिये। वरन् लोकहित के लिये, अपने से निर्बल की सहायता के लिये इनका उपयोग किया जाना चाहिये। विद्वान, बलवान या धनवान का गौरव इसी बात में है कि उनके द्वारा कम ज्ञान वालों को, निर्धनों को ऊँचा उठाने का प्रयास किया जाय। जैसे वृक्ष, कूप, तड़ाग, उपवन, पुष्प, अग्नि, जल, वायु, बिजली आदि श्रेष्ठ समझे जाने वाले पदार्थ अपनी महान् शक्तियों को लोक-हित के लिये सदैव वितरित करते रहते हैं वैसे ही हमें भी अपनी शक्तियों का जीवन-निर्वाह

मात्र अपने लिये रख कर शेष को जग-हित के लिये समर्पित कर देना चाहिये।

प्रचोदयात् स्वयं त्वितरांश्च मानवान्,
नरः प्रयाणाय च सत्यवर्त्मनि।
कृतं हि कर्माखिलमित्थमगिना,
वदन्ति धर्म इति हि विपश्चितः ॥

‘प्रचोदयात्’ पद का अर्थ है कि मनुष्य अपने आपको तथा दूसरों को सत्य मार्ग पर चलने के लिये प्रेरणा दे। इस प्रकार किये हुए सब कामों को विद्वान लोग धर्म कहते हैं।

प्रेरणा संसार की सबसे बड़ी शक्ति है। इसके बिना सारी साधन सामग्री बेकार है, चाहे वह कितनी ही बड़ी क्यों न हो। प्रेरणा से उत्साहित और प्रवृत्त हुआ मनुष्य यदि कार्य आरम्भ कर देता है तो साधन अपने आप जुटा लेता है। उसे ईश्वरीय सहायताएँ मिलती हैं और अनेक सहयोगी प्राप्त हो जाते हैं इसलिए अपने आपको सन्मार्ग पर चलने के लिये प्रेरणा तथा प्रोत्साहन देना चाहिये तथा दूसरों को श्रेष्ठता की दिशा में अग्रसर करने के लिये उन्हें प्रेरित करना चाहिये। वस्तुयें देकर किसी का उतना उपकार नहीं किया जा सकता है। सत्कार्य के लिये प्रेरणा देना इतना बड़ा पुण्य कार्य है कि उसकी तुलना में छोटी-मोटी पुण्य क्रियायें बहुत ही तुच्छ बैठती हैं।

गायत्री-गीतां ह्येतां यो नरो वेत्ति तत्त्वतः।
स मुक्तवा सर्वदुःखेभ्यः सदानन्दे निमज्जति ॥

जो मनुष्य इस गायत्री-गीता को भली प्रकार जान लेता है, वह सब प्रकार के दुःखों से छूट कर सदा आनन्दमग्न रहता है।

गायत्री गीता के उपर्युक्त 12 श्लोक समस्त वेद शास्त्रों में भरे हुए ज्ञान का निचोड़ है। समुद्र मन्थन से 14 रत्न निकले थे। समस्त शास्त्रों के समुद्र का मन्थन यह 14 श्लोक रूपी 14 रत्न हैं। जो व्यक्ति इन्हें भली प्रकार हृदयंगम कर लेता है, वह कभी भी दुःखी नहीं रह सकता, उसे सदा ही आनन्द रहेगा।

महालक्ष्मी के सम्पूर्ण स्वरूपों को प्राप्त करने के लिये तथा
ब्रह्माण्डीय शक्तियों को केन्द्रीयकृत करने का सबसे दिव्य यंत्र

वृहद

श्री यंत्र

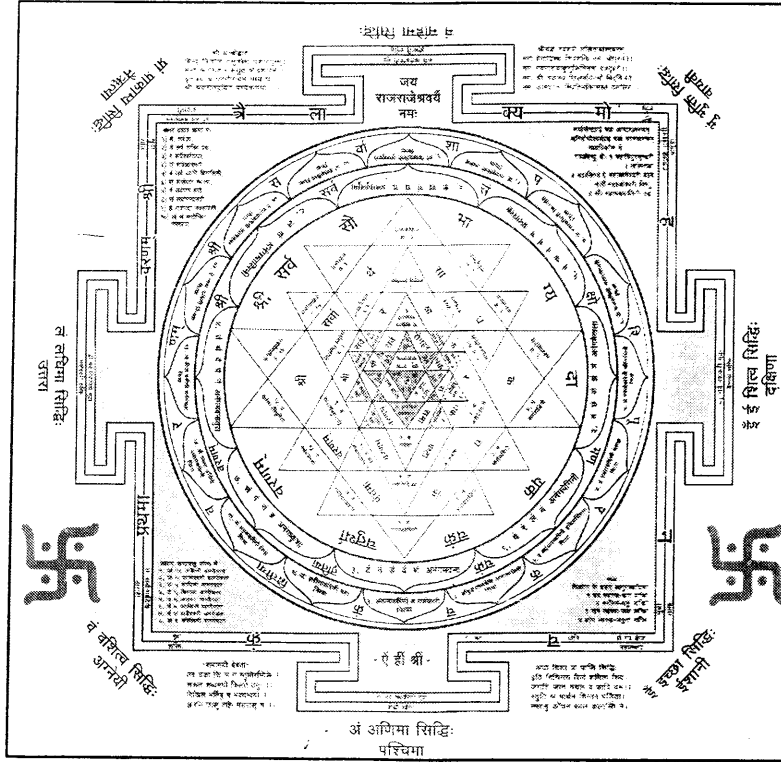
मूल्य 301/-

यह वही दुर्लभ यंत्र है जिसे आदि गुरु
श्री शंकराचार्य जी प्रत्येक सनातनधर्मी के
गृह में स्थापित करना चाहते थे।

नोट: उपरोक्त यंत्र किसी धातु का टुकड़ा मात्र नहीं है बल्कि पूर्ण
वैदिक विधान से चैतन्य किया गया जीवित जागृत शरीर है।
अतः अन्य जगहों पर उपलब्ध यंत्रों से इसकी तुलना न करें।

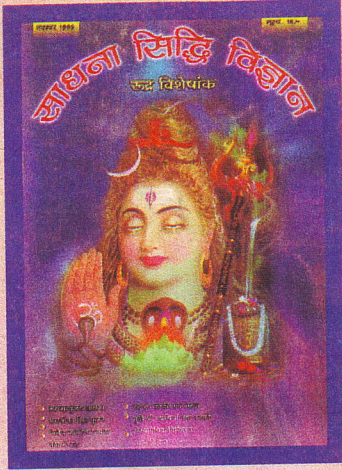
हमारा पता
साधना सिद्धि विज्ञान
फ्लेट नं. 1,2 मिनाल व्यू-॥ पंजाबी बाग भोपाल
दूरभाष : (0755) 576346, 591143

श्री यंत्रम्

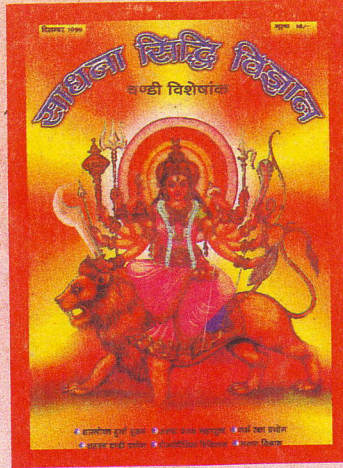


यत्रास्ति भोगो नहि तत्र मोक्षो ।
यत्रास्ति मोक्षो नहि तत्र भोगः ॥
श्री सुन्दरी साधन तत्त्वगणां
भोगश्च मोक्षवश करस्थ एव ॥

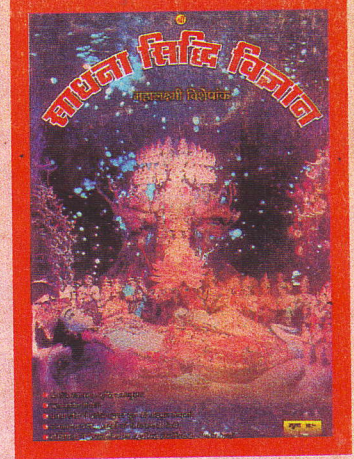
अर्थात् जहाँ भोग है वहाँ मोक्ष
नहीं और जहाँ मोक्ष है वहाँ भोग
नहीं किन्तु भगवती त्रिपुर सुन्दरी
की आराधना करने वालों के लिए
भोग तथा मोक्ष दोनों ही सहज हैं ।



रुद्र विशेषांक



चण्डी विशेषांक



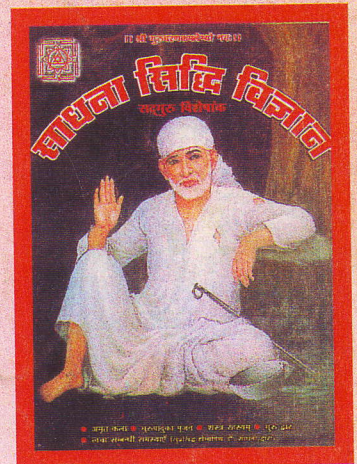
महालक्ष्मी विशेषांक



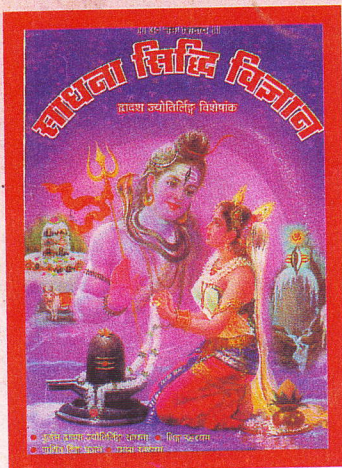
श्री हनुमन्त विशेषांक



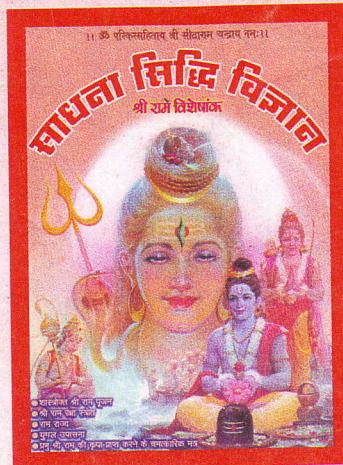
श्री महाकालिका विशेषांक



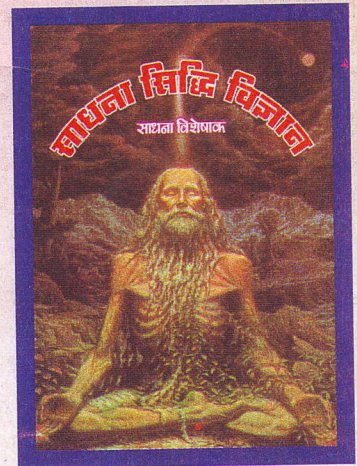
सद्गुरु विशेषांक



द्वादश ज्योतिर्लिङ्ग विशेषांक



श्रीराम विशेषांक



साधना विशेषांक

अपने नजदीकी पुस्तक विक्रेता से खरीदें या हमें लिखें

साधना पब्लिकेशन

शॉप नं. 3, प्लाट नं. 210 नफीस कॉम्पलेक्स, एम.पी. नगर, जोन-1, भोपाल-462 011 दूरभाष : 576346

नोट : वांछित पुस्तकों के मूल्य के साथ डाक व्यय 20/- अतिरिक्त भेजें।